अंक : १४०

अक्तूबर-दिसंबर २०१७

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियां

डॉ. लता अग्रवाल • मानवी वहाणे • शकुंतला पालीवाल
नीता श्रीवास्तव • अर्चना मिश्रा

आमने-सामने

मधु प्रसाद

सागर-सीपी

बलराम अग्रवाल

२० रुपये

छोटा हो या मध्यम, जैसा भी हो उद्यम का आकार
सबकी जरुरतें पूरी करने के लिए हम हैं तैयार

We Sheltering the MSME sector through tailor made loans

MAHABANK
MSME FINANCE

- Attractive Interest Rate
- Collateral free loan for Micro and Small enterprises upto ₹ 3.00 Crore under CGTMSE cover.

महाबँक
एमएसएमई फाइनेंस

- आकर्षक ब्याज दर
- सीजीटीएमएसई कवर के अंतर्गत सूक्ष्म एवं लघु उद्यमों के लिए ₹ ३.०० करोड तक का कोलैटरल मुक्त ऋण

*T&C apply *नियम व शर्तें लागू

Contact your nearest branch OR Send SMS to 56161: BOM<space>MSME<space>Your City Name

कृपया अपनी नजदीकी शाखा से संपर्क करें अथवा 56161 पर एसएमएस करें : BOM<space>MSME<space>आपके शहर का नाम

बैंक ऑफ महाराष्ट्र
Bank of Maharashtra
भारत सरकार का उद्यम

एक परिवार एक बैंक

• Toll Free No.: 1800-233-4526 • Website: www.bankofmaharashtra.in • Net Banking: https://www.mahaconnect.in

फोन या ई-मेल के माध्यम से अपने इंटरनेट बैंकिंग की जानकारी यथा यूज़र आई-डी/पासवर्ड या अपने क्रेडिट/डेबिट कार्ड का क्रमांक/सीवीवी/ओटीपी किसी को भी न बताएं.
Do not share your internet banking details, such as, user ID / Password or your Credit / Debit card number / CVV / OTP with anyone, either over phone or through email.

अक्तूबर-दिसंबर २०१७
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"

संपादिका
मंजुश्री

संपादन सहयोग
डॉ. राजम पिल्लै
जय प्रकाश त्रिपाठी
अशोक वशिष्ठ
अश्विनी कुमार मिश्र

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ७५० रु., **त्रैवार्षिक** : २०० रु.,
वार्षिक : ७५ रु.,

कृपया सदस्यता शुल्क
मनीऑर्डर, चैक द्वारा
केवल **"कथाबिंब"** के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
मो.: ९८१९१६२६४८, ९८१९१६२९४९

e-mail : kathabimb@gmail.com
www.kathabimb.com

● **न्यूयॉर्क संपर्क** ●
नरेश मित्तल
(M) 845-304-2414
नमित सक्सेना
(M) 347-514-4222
● **शिकागो संपर्क** ●
तूलिका सक्सेना
(M) 224-875-0738

एक प्रति का मूल्य : २० रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु
२० रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४४-४८ पृष्ठ)

कहानियां

।। ७ ।। सिग्नल के पार ज़िंदगी – डॉ. लता अग्रवाल
।।११।। बड़ी होती लड़की – मानवी वहाणे
।।२३।। अमावस का चांद – शकुंतला पालीवाल
।।२७।। पटवारन मां – नीता श्रीवास्तव
।।३३।। कटघरे में खड़ा रिश्ता – अर्चना मिश्रा

लघुकथाएं

।।१९।। मन्नत / डॉ. नीना छिब्बर
।।२६।। सुरक्षित स्थान / नरेंद्र कौर छाबड़ा
।।४४।। विरासत / सेवा सदन प्रसाद

कविताएं / ग़ज़लें

।।१०।। सरहद पर खड़ा बूढ़ा पेड़ / डॉ. दीपक कुमार पाल
।।२२।। दो ग़ज़लें / नवीन माथुर "पंचोली"
।।३२।। ग़ज़ल / राकेश भ्रमर
।।३७।। ग़ज़ल / चंद्रसेन "विराट"
।।४१।। कविता / मधु प्रसाद
।।४८।। ग़ज़ल / नंदकिशोर बावनिया

स्तंभ

।। २ ।। "कुछ कही, कुछ अनकही"
।। ४ ।। लेटर बॉक्स
।।३९।। "आमने-सामने" / डॉ. मधु प्रसाद
।।४५।। "सागर-सीपी" / वलराम अग्रवाल
।।४९।। "औरतनामा" / डॉ. राजम पिल्लै
।।५२।। "वातायन" / डॉ. अरविंद
।।५३।। पुस्तक-समीक्षा

●"कथाबिंब" अब फ़ेसबुक पर भी ●
facebook.com/kathabimb
आवरण पर नामित रचनाकारों से निवेदन है कि
वे कृपया अपने नाम को "टैग" करें.

आवरण चित्र : लंदन टॉवर ब्रिज़, १४ जुलाई २०१७.
चित्र : डॉ. अरविंद

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

कुछ कही, कुछ अनकही

वर्ष २०१७ का यह अंतिम अंक है. इसके साथ ही "कथाबिंब" प्रकाशन के ३९ वर्ष पूरे हुए हैं. अगले साल के शुरू में ही नया अंक पाठकों के पास पहुंच पायेगा. सभी को नव वर्ष की शुभकामनाएं. हम अपने सभी विज्ञापनदाताओं के विशेष रूप से आभारी हैं. बिना उनके आर्थिक सहयोग के इस मुकाम तक पहुंच पाना मुमकिन नहीं हो पाता. यहां यह भी रेखांकित करना ज़रूरी है कि अनेक रचनाकारों ने हमारे प्रयास में निरंतर सहयोग दिया है. वहीं पाठकों से भी हमें भरपूर स्नेह मिलता रहा है. वर्तमान में अनेक वार्षिक, त्रैवार्षिक सदस्यों के अलावा पत्रिका के लगभग ३५० आजीवन सदस्य हैं. सभी का आभार.

"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार" के लिए अभिमत भेजने हेतु "मत-पत्र" पृष्ठ ५६ पर छपा है. वर्ष २०१७ के चारों अंकों में, इस वर्ष भी २० कहानियां प्रकाशित हुईं. पाठकों से निवेदन है कि मत-पत्र के माध्यम से, पोस्ट कार्ड अथवा मेल द्वारा, अपने अभिमत का क्रम हमें भेजें. यह भी अनुरोध है कि कृपया अधिक से अधिक संख्या में इस आयोजन में भाग लें. "कथाबिंब" ही एक मात्र पत्रिका है जो पाठकों के सहयोग से लोकतांत्रिक तरीक़े से लेखकों को पुरस्कृत करती है. वर्ष के सभी अंक आप "कथाबिंब" की वेबसाइट पर भी पढ़ सकते हैं. वेबसाइट के अलावा "कथाबिंब" को फ़ेसबुक पर भी देखा जा सकता है.

यह विदित ही है कि "कथाबिंब" संस्कृति संरक्षण संस्था के सौजन्य से प्रकाशित होती है. संस्था प्रति वर्ष एक परिगोष्ठी आयोजित करती है. इस बार की परिगोष्ठी का विषय है : "सोशल मीडिया का भारतीय संस्कृति पर प्रभाव" दिनांक, ४ फरवरी २०१८, दोपहर ३ बजे. स्थान : विवेकानंद डिग्री कॉलेज़ सभागृह, चेंबूर, मुंबई. परिगोष्ठी के विषय पर छात्रों के लिए एक लेख प्रतियोगिता भी आयोजित की गयी है. प्रविष्टी भेजने की अंतिम तिथि १५ जनवरी २०१८है. अधिक जानकारी के लिए कृपया संपर्क करें.

●

इस अंक की कहानियों पर यूं ही कुछ छुट-पुट : पहली कहानी *"सिग्नल के पार ज़िंदगी,"* लेखिका डॉ. लता अग्रवाल की "कथाबिंब" में दूसरी कहानी है. रोज़ ही चौराहों से गुज़रते हुए हम स्त्री-पुरुषों को भीख़ मांगते देखते हैं. सिग्नलों पर बार-बार वे ही चेहरे आपको अक्सर दिख जायेंगे. ऐसा लगता है कि कुछ लोगों ने भीख़ मांगना अपना पेशा बना लिया है. कहानी में भीख़ मांगने वाली एक औरत विवशतावश अलग तरीक़ा अपनाती है. मानवी वहाणे (*"बड़ी होती लड़की"*) एक युवा लेखिका हैं. हर बड़ी होती लड़की के अपने सपने होते हैं. वय-संधि के ख़तरों के बारे में जादूगरनी (!) उसे बार-बार समझाती रहती है कि अपने मन की खिड़की बंद रखो किंतु ख़तरों से जूझकर भी कोई भी बड़ी होती लड़की सपने देखना बंद नहीं करती. हर किसी का अनुभव एक-सा हो यह ज़रूरी नहीं ! अगली कहानी *"अमावस का चांद"* (शकुंतला पालीवाल) एक किशोरवय इकलौते लड़के की कहानी है जो पिता द्वारा पिटाई किये जाने के बाद घर छोड़ देता है. चार-पांच साल भटकने के बाद उसे घर की याद सताती है. किंतु मन में शंका उत्पन्न होती है कि घर लौटने पर मां-बाप ने उसे नहीं स्वीकारा तो क्या होगा ? वह पहले से निश्चित कर लेना चाहता है. नीता श्रीवास्तव की कहानी *"पटवारन मां"* एक देशव्यापी समस्या की ओर इशारा करती है. चाहे शहर हों या गांव औरतों पर बुरी नज़र रखने वालों की कमी नहीं है. माया शिक्षिका बन कर गांव आयी तो एडजस्ट होने में समय लगा. गांव की पटवारन के घर में किराये में रहने लगी. गांव का पंडित अपनी आंखें ठंडी करने, किसी भी समय, कहीं भी पहुंच जाता है. लेकिन दिखने में सीधी-साधी लगने वाली पटवारन मां एक दिन उसे आड़े हाथों लेती है. पति-पत्नी में से किसी एक के न रहने पर जीवन पहाड़ की तरह लगने लगता है. अंक की अंतिम कहानी *"कटघरे में खड़ा रिश्ता"* (अर्चना मिश्रा) में आभा पति विनय के न रहने पर पुत्र के साथ रहने लगती है. घर के हर काम में हाथ बटाती है. रोज़ पार्क में घूमने जाती है जहां उसकी जान-पहचान अनंत से हो जाती है जिसकी पत्नी की मृत्यु भी कुछ महीनों पहले हुई थी. मात्र मित्र बनकर दोनों अपना दुख साझा करना चाहते हैं किंतु पुत्र को यह पसंद नहीं. माया अकेला रहना स्वीकार करती है पर उसे कोई लांछन स्वीकार नहीं.

यह मात्र संयोग ही है इस अंक की पांचों कहानियों की रचनाकार महिलाएं हैं और "आमने-सामने" स्तंभ में भी महिला गीतकार का आत्मकथ्य प्रकाशित है. इस कारण इस अंक को महिला विशेषांक कहना सम्यक होगा

●

अभी हाल ही में हिमाचल प्रदेश और गुजरात में चुनाव संपन्न हुए. दोनों प्रांतों में भाजपा विजयी हुई. हिमाचल प्रदेश में कॉन्ग्रेस की सरकार थी लेकिन चुनाव में उसकी बुरी तरह हार हुई और भाजपा को स्पष्ट बहुमत मिला. गुजरात में पिछले २२ सालों से भाजपा की सरकार थी. मोदी के प्रधानमंत्री बन जाने के बाद गुजरात में कोई कद्दावर नेता नहीं था.

भाजपा और कॉन्ग्रेस दोनों ही ने एड़ी-चोटी का जोर लगाया. अंततः एन्टीइनकम्बेंसी के बावजूद सत्ता भाजपा के पास ही रही. उसका वोट शेयर बढ़ा, कम नहीं हुआ. तमाम ना-नुकर के बाद कॉन्ग्रेस ने हार्दिक पटेल से हाथ मिलाया और पाटीदारों को आरक्षण दिलाने का आश्वासन दिया जबकि बख़ूबी ज्ञात था कि ५१ प्रतिशत की सीमा के कारण ऐसा नहीं हो सकता. जिग्नेश और अल्पेश के साथ भी गठजोड़ किया. राहुल बाबा को लगा कि अब तो गुजरात मुट्ठी में आगया है. भाजपा की तर्ज पर धड़ाधड़ रैलियों का सिलसिला शुरू हो गया. तुम डाल-डाल तो हम पात-पात. शुरूआत हुई *"विकास गंदा हो गया है"* से, फिर नोटबंदी, गब्बर सिंह टैक्स और हर रैली में मोदी से रोज़ सवाल पूछना. मोदी की नकल में लोगों ने पहली बार राहुल को मंदिर जाते देखा. लगा कि शायद कुछ हिंदू वोट मिल जायें ! यह भी कहा गया कि वे पक्के जनेऊ धारी हिंदू हैं. अल्पेश का कहना था कि मोदी उनके जितने ही काले थे लेकिन अब उनके लिए रोज़ तायवान से महंगे मशरूम आते हैं जिन्हें खा-खाकर वे गोरे हो गये हैं. कॉन्ग्रेस के धुर और पुराने हितैषी मणि शंकर अय्यर का कहना कि मोदी नीच किस्म का आदमी है कॉन्ग्रेस को भारी पड़ गया. डैमेज़ कम करने के लिए आख़िर उन्हें कॉन्ग्रेस से निकालना पड़ गया.

चुनाव की तारीख़ों की घोषणा को लेकर भी बहुत-सी बातें कही गयीं. हिमाचल प्रदेश की तारीख़ों के साथ ही गुजरात की तारीख़ें क्यों नहीं घोषित की गयीं? बाढ़ का तो बहाना था, मुख्य कारण आचार संहिता लगने से पहले गुजरात में अनेक योजनाओं का श्रीगणेश करना था. कॉन्ग्रेस का कहना था कि चुनाव आयोग की भाजपा से मिली भगत है. इन्हीं दिनों बाबरी मस्जिद का विवादित ढांचा गिराये जाने की बरसी भी पास आ रही थी. उच्चतम न्यायालय ने तय किया कि इस मामले की सुनवाई रोज़ होगी. पहले दिन ही कपिल सिब्बल ने कहा कि सुनवाई २०१९ के लोकसभा के चुनावों के बाद हो. जब इस पर बात नहीं बनी तो यह रोड़ा अटका दिया कि उन्हें अनुवाद होकर पूरे काग़ज़ नहीं मिले हैं. फिर क्या था थोड़े दिनों तक सुनवाई स्थगित कर दी गयी. यह रहस्य ही है कि सिब्बल महोदय किसके वकील हैं ? कॉन्ग्रेस ने उनसे किनारा कर लिया है. सुन्नी बोर्ड वाले भी कहते हैं कि वे हमारे वकील नहीं हैं. ३२ तथाकथित बुद्धिजीवियों ने उच्चतम न्यायालय को एक पेटीशन दिया है कि मुकदमे का फैसला किसी के पक्ष मे न हो. उन्हें डर है कि यदि फ़ैसला कहीं राम मंदिर के हक में चला गया तो आगे भाजपा की जीत का रास्ता आसान हो जायेगा. ये वे ही लोग हैं जो हर समय "कैंडल-मार्च" के लिए तत्पर रहते हैं. मोहतरमा तीस्ता सेतलवाद इसमें सबसे आगे हैं.

कॉन्ग्रेस ने हमेशा डबल गेम खेला है. एक ओर बाबरी मस्ज़िद का दरवाजा खुलवाया तो मुसलमानों के वोटों के ख़ातिर शाहबानो केस के निर्णय को वापस लिया. मुझे समझ में नहीं आता कि यह कॉन्ग्रेस वाद आख़िर क्या है? किसी भी तरह जोड़-तोड़ करके सत्ता में बना रहना ही क्या कॉन्ग्रेस वाद है. आज़ादी के बाद के अधिकांश सालों में कॉन्ग्रेस ही सत्ता में रही है. आज देश जिन समस्याओं से जूझ रहा है – ग़रीबी, बेरोज़गारी, भुखमरी, किसानों द्वारा आत्महत्याएं, आतंकवाद, कश्मीर, नक्सलवाद, भ्रष्टाचार और भी अनेक समस्याएं वे सब कॉन्ग्रेस द्वारा ही पैदा की गयी हैं. दोनों राज्यों के चुनावों के दौरान ही कॉन्ग्रेस के उपाध्यक्ष का प्रमोशन हो गया. अध्यक्ष का चुनाव महज एक ड्रामा था. कॉन्ग्रेस के एक सदस्य शहज़ाद पूनावाला ने पूरी प्रक्रिया का खुलकर विरोध किया तो भाजपा का एजेंट कहकर उसका मज़ाक बनाया गया. लेकिन वह पीछे नहीं हटा. राहुल गांधी का देश की सारी समस्याओं से निज़ात पाने का अपना क्या "विज़न" है? सुनने में आया है कि मत गणना अभी पूरी नहीं हो पायी थी कि चुनाव की थकान मिटाने के लिए एक सिनेमा हाल में "स्टार ट्रैक" देख रहे थे. क्या हमें देश चलाने के लिए एक पार्ट टाइम नेता चाहिए?

महात्मा गांधी का कहना था कि आज़ादी हासिल हो जाने के बाद कॉन्ग्रेस की भूमिका ख़तम हो गयी है, इसे भी समाप्त हो जाना चाहिए. कॉन्ग्रेस को १३७ साल हो गये हैं. गांधी के नाम को भुनाते-भुनाते कॉन्ग्रेस अपने आदर्शों से च्युत हो गयी है. लोकतंत्र के लिए देश में एक मजबूत विपक्ष का होना बहुत आवश्यक है. यह विरोधी विचारधारा वाली पिटी-पिटायी कई पार्टियों के गठबंधन से संभव नहीं हो सकता. युवाओं की एक सर्वथा नयी पार्टी की आवश्यकता है, जिसमें गांधी परिवार का कोई व्यक्ति न हो, सोनिया गांधी न राहुल गांधी और न ही प्रियंका. कॉन्ग्रेस में ही अनेक युवा हैं, जैसे सचिन पायलट, ज्योतिआदित्य सिंधिया, मिलिंद देवड़ा आदि. आगे बढ़कर इन युवाओं को नयी पार्टी की बागडोर अपने हाथ में लेनी चाहिए. आरक्षण के मुद्दे को लेकर भी पुनर्विचार करने की आवश्यकता है. आरक्षण केवल दस साल के लिए लागू किया गया था. वर्तमान सरकार के पास पर्याप्त बहुमत है. जीएसटी की तरह ही अन्य दलों से मिलकर केवल आर्थिक आधार पर आरक्षण लागू किया जाये वह भी मात्र शिक्षा में.

●

चलते-चलते — अभी राम-रहीम के कारनामे पूरी तरह सामने नहीं आ पाये हैं, कि आध्यात्मिक विश्वविद्यालय चलाने वाले वीरेंद्र देव बाबा चर्चा में हैं. इनके आश्रम पूरे देश में फैले हुए हैं किंतु बाबा का कहीं पता नहीं है !

अरविंद

लेटर-बॉक्स

▸▸ 'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर '१७ अंक प्राप्त हुआ. अंक में प्रकाशित सभी रचनाएं पठनीय हैं. 'कथाबिंब' ही एक ऐसी पत्रिका है, जो साहित्य को समर्पित है, व्यावसायिकता से दूर है, जिसका एक मात्र उद्देश्य पाठकों तक उत्कृष्ट सामग्री उपलब्ध कराना है. अंक की सभी कहानियां अलग-अलग मिज़ाज और भावनाओं की कहानियां हैं. 'प्रेम दीवानी' अनिवासी भारतीय विनायक मूर्ति की छल-कथा है. अमेरिका की मारिया भारतीयता से इतनी प्रभावित है कि स्वयं को मीरा मानने लगती है. उसके मन में मीरा जैसा सहज प्रेम और विश्वास है, समर्पण है, लेकिन मूर्ति न केवल मारिया की देह से खिलवाड़ करता है, अपितु उसकी भावनाओं को भी रौंदता है और अन्य से शादी करता है. आज के अर्थ-लोलुप भारतीय युवाओं के चरित्र के एक रूप को बख़ूबी उभारा है. पुष्पा सक्सेना को कोटिशः धन्यवाद कि उन्होंने एक श्रेष्ठ रचना 'कथाबिंब' के पाठकों को दी. कहानी 'पांव बदलता सफ़र' भारत के विकास की कथा को गंभीरता से कहती है, जिसे आज़ादी के बाद की जन्मी पीढ़ी अनुभव कर रही है. गांव से क़स्बे का क़स्बे से शहर का, शहर से राजधानी का, और राजधानी से विदेश का पलायन है. हर पलायन व विस्थापन अपनी विवशता है, जिसमें सब कुछ पीछे छूट जाता है. साथ ही सामाजिक, आर्थिक विषमताएं भी चलती हैं, जो पलायन के दर्द को बढ़ा देती हैं. 'रेगिस्तान में बारिश' भावना प्रधान कहानी है. यह अस्सी के दशक की फ़िल्मी प्रेम-कहानी की तरह है, जिसे सेल्युलाइड पर न उतारकर काग़ज़ पर उकेरा गया है. इसमें सामाजिक परिवेश के साथ पारिवारिक संबंधों को सूक्ष्मता से बुना गया है. संस्कारों में बंधी राधिका, बीमारी से अशक्त पिता, आवारा-निकम्मा भाई और स्वार्थी मां सभी अपनी-अपनी भूमिका में संलग्न हैं. पिता को चिंता है कि उसके मरने के बाद एक मात्र कमाऊ पुत्री का क्या होगा! मां सोचती है कि पुत्री की शादी के बाद घर-ख़र्च कैसे चलेगा! निकम्मे भाई की आवारगी बंद हो जायेगी! लेकिन पिता निर्णय लेता है, एक सशक्त पिता की तरह. पुत्री को विवाह करके घर छोड़ने की अनुमति सहर्ष देता है. सतरंगी फूलों से उठी यह एक सुगंधित कथा है. राकेश भ्रमर की एक और प्रेम-कहानी सालों-साल ज़ेहन में रहेगी. 'पप्पू पाकिस्तानी' खेल से उठे उन्माद की कहानी है. वर्तमान के किक्रेट-प्रेम की कथा है, जो अपनी टीम को हारते नहीं देखना चाहता है, जुनून की हद तक और हारने पर अंत में अपने प्राण हार जाता है. 'नायिका' फ़िल्मी नायिका के सम्मोहन में बंधे युवा की कहानी है, जो सच्चाई से रूबरू होता है. एक अच्छी कहानी है. लघुकथाएं, कविताएं, ग़ज़लें भी पठनीय हैं, रोचक हैं.

– राजेंद्र कुमार
२८२, राजीवनगर, नगरा, झांसी-२८४००३.
मो. : ९४५५४२०७२७

▸▸ 'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर अंक मिला. पूर्व के अंकों की भांति यह अंक भी अपने सभी उपयोगी स्तंभों के साथ भी संपन्न रहा. ऐसे सर्वथा निर्दोष एवं त्रुटिरहित पत्रिका के प्रकाशन के लिए संपूर्ण हिंदी संसार आपका ऋणी रहेगा. प्रकाशित सभी कथाएं किसी-न-किसी समस्या से जुड़ी हुई हैं और उनके समाधान का भी सम्यक निदान ढूंढ़ा गया है. 'कथाबिंब' के सभी लेखकों सहित व्यवस्था से संबंधित सभी विद्वानों को अशेष बधाई.

– डॉ. शिववंश पांडेय
लीलाधाम, ३/३०७,
न्यू पाटलीपुत्र कॉलोनी, पटना-८०००१३.

▸▸ 'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर २०१७ अंक प्राप्त हुआ. एक अच्छे ख़ासे प्रवास के बावजूद भी पत्रिका समय से प्रकाशित एवं प्रेषित करना आपके इसके प्रति समर्पण का द्योतक है. कहानियों की एक झलक आपके संपादकीय में सदा मिल ही जाती है जो पढ़ने की उत्सुकता और बढ़ा देती है, साथ ही यह इस बात को भी रेखांकित करता है कि स्तरीयता से कोई समझौता आपको पसंद नहीं है.

पप्पू पाकिस्तानी की कहानी में (दो) गालियों का समावेश मेरी समझ में ऐसी कोई रोचकता नहीं पैदा करता, जिनके बिना काम नहीं चल सकता था... ख़ैर

विषय मौजूं है और हक़ीकत के काफ़ी क़रीब है.

लघुकथाएं 'अपनी बात' संप्रेषित करने में समर्थ रही हैं, विशेषकर कृष्ण मनु की 'जाल', हां 'इतिहास के खिलाफ़' शायद मैं पहले पढ़ चुका हूं. 'सागर सीपी' के अंतर्गत मनोहर अभय जी का साक्षात्कार रोचक एवं ज्ञानवर्धक रहा ख़ासकर नयी पीढ़ी के लिए संदेश. गिरीश भाई की साफ़गोई पसंद आयी. पत्रिका कथा प्रधान होते हुए भी अन्य विधाओं के साथ भी न्यायिक रही ऐसा मैं कह सकता हूं इसके लिए साधुवाद.

- के. पी. सक्सेना 'दूसरे'

शांतिनगर, टाटीबंध,रायपुर-४९२०११.

▸▸ 'कथाबिंब' जुलाई-सितंबर २०१७ अंक मिला. अंक की ५ कहानियों में राकेश भ्रमर की कहानी 'रेगिस्तान में बारिश' सर्वोत्तम है. एक आशावादी अंत वाली, सात्विक प्रेम की कथा है यह. पुष्पा सक्सेना की प्रेम दीवानी एक धोखे की कहानी है. अंत में नायिका को न्याय दिलवाने की बात अवश्य है पर न्याय कहानी में घटित नहीं होता. 'पांव बदलता सफ़र' (अनुपम श्रीवास्तव) में सफ़र ही सफ़र है, कहानी तो है ही नहीं. पप्पू पाकिस्तानी (ज़ूनियर मंटो) एक विशेष मानसिकता वाले क़िरदार की कहानी है जो बहुतायत में मिल सकते हैं, किंतु जुनून की हद तक जाने वाले अपवाद ही हैं. 'नायिका' (गिरीश पंकज) एक नायिका विशेष में रुचि रखने वाले चरित्र की कथा है. कहानी में उससे वास्तव में मिलने की बात है. अंत का निर्वाह ठीक तरह से हो नहीं पाया है.

– हितेश व्यास

६-ए/७०५, कल्पतरु सेरेनिटी,
नवरत्न मंगल कार्यालय के सामने, महादेव नगर,
मांजुरी, पुणे-४१२३०७.मो. : ९४६०८५३७३६

▸▸ 'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर २०१७ का अंक प्राप्त हुआ. आवरण पृष्ठ बड़ा ही आकर्षक है. कहानियों का कथानक रोचक है. श्री गिरीश पंकज की आत्मकथा ('आमने-सामने' स्तंभ) में पढ़कर ख़ुशी हुई कि पंकज जी कैसे सफल पत्रकार बने. यह आजकल के नवयुवकों के लिए नसीहत है. कविताएं और ग़ज़ल रोचक रहीं. 'दग़ैल' उपन्यास के विषय में श्री जय राम सिंह गौर की समीक्षा पढ़कर उपन्यास के विषय में जानकारी मिली.

– डॉ. इंद्रकुमार शर्मा

३/१३१, सेक्टर-२,
राजेंद्र नगर, साहिबाबाद (उ. प्र.)

▸▸ 'कथाबिंब' के अंक १३९ (जुलाई-सितंबर २०१७) के आमुख व अंतिम पृष्ठ पर अलास्का की मनमोहक झलकियां देर तक देखते रहने का मन करता रहता है. यह नमित सक्सेना के कैमरे का कमाल है. आपका संपादकीय रोचक होता है और समसामयिक घटनाओं पर सार्थक व गंभीर टिप्पणी लिये होता है, जिसे अनावश्यक नहीं कहा जा सकता. जब बात निकलती है तो कारकों का उल्लेख हो जाना स्वाभाविक है. डॉ. पुष्पा सक्सेना ने 'प्रेम दीवानी' में अमरीकी मूल व अप्रवासी भारतीय के जो विरोधाभासी चरित्र खड़े किये हैं, उनसे कहानी में ज़बर्दस्त कंट्रास्ट पैदा होता है. कहानी कहीं न कहीं सच को उजागर करती लगती है. तीन पीढ़ियों द्वारा असंतुष्ट होकर विवशता में किये गये पलायन और अपने-अपने ठांव पा लेने के संतोष की कहानी 'पांव बदलता सफ़र' अनुपम श्रीवास्तव ने बड़े सहेजकर कही है. ज्वलंत सामाजिक समस्याओं के विमर्श में इसे रखा जा सकता है.

'रेगिस्तान में बारिश' राकेश 'भ्रमर' की ऐसी कोमल प्रेम कहानी है, जो मन में स्थायी सुगंध छोड़ जाती है. जिसे पाठक शिद्दत से महसूस करता रहता है. ज़ूनियर मंटो की 'पप्पू पाकिस्तानी' एक ऐसे जुनून की कहानी है, जिसे भारत-पाक क्रिकेट मैच के दौरान ख़ूब देखा जाता है. गिरीश पंकज ने 'नायिका' के मिलन को बड़ी ख़ूबसूरती से इतना स्वाभाविक बना दिया है कि असंभव होते हुए भी सब कुछ संभव लगता है. रोचक कहानी का अंत तो और भी सच लगता है, कि ऐसा हुआ होगा. 'आमने-सामने' में भी गिरीश पंकज पूरी सच्चाई के साथ खड़े हैं. सभी कथाकारों को बधाई. कहानियों का चयन इतना उत्तम है कि पत्रिका के वर्ष २०१७ के पुरस्कारों में इस अंक की कहानियों की बहुलता रहेगी.

'सागर-सीपी' में डॉ. मनोहर अभय का साक्षात्कार

कलात्मक है. 'औरतनामा' में डॉ. राजम पिल्लै किसी भी व्यक्तित्व के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी देती हैं और ऐसे पक्ष को प्रस्तुत करती हैं, जिन्हें हम पूरी तरह नहीं जानते. बेशक इसके पीछे उनकी विशेष दृष्टि और शोध ही होते हैं.

लघुकथाएं अच्छी हैं. नीता श्रीवास्तव की 'गौ माता' तो हम रोज़ ही देखते हैं. बस लघुकथा पकड़ने की बात है. ग़ज़लें, कविताएं व पुस्तक-समीक्षा अपने स्थान पर उचित हैं. सभी स्तंभ आवश्यक और संतुलित हैं. पत्रिका की निरंतरता बनाये रखना और समय पर पाठकों तक पहुंचना, किसी उच्च लक्ष्य को प्राप्त करने जैसा ही है.

– बृज मोहन

मनोरम, ३५, कछियाना, पुलिया नंबर-८,
झांसी-२८४००३. मो.: ९४१५६१४५५२

▸▸ 'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर २०१७ का अंक मिला. प्रकृति की लीला की ख़ूबसूरत कहानी बयान करते हुए अंक के आवरण पृष्ठ ने आपके आवरण पृष्ठ को सुंदर और सार्थक बनाने के क्रम को आगे बढ़ाया है.

'कुछ कही, कुछ अनकही' के दो पृष्ठों में आप अंक की अंतर्कथा के साथ-साथ भारत की ताज़ातरीन धड़कनों को भी स्पष्ट और खरे-खरे निष्कर्षों के साथ नाप लेते हैं. संपादकीय में आपका भाव 'ना काहू से दोस्ती, और ना काहू से बैर' का रहता है. इस तरह आप अपने पत्रकारिता धर्म को सही ढंग से निभाने में सफल हो रहे हैं.

आज वास्तव में हम और हमारा देश, दोनों ऐसी चुनौतियों से गुज़र रहे हैं, जो बहुत ख़तरनाक स्थितियों की तरफ़ हमें धकेल सकती हैं. संचार के क्षेत्र में जो विस्फोट हुआ है, उसने हमें ऐसी आभासी दुनिया में खड़ा कर दिया है, जो भ्रम के कोहरे में जी रही है. फ़ेस बुक पर हज़ारों के साथ संपर्क होने का दावा करने वाले व्यक्ति अपने पड़ोसियों और रिश्तेदारों से भी दूर हो गये हैं. सारे शिष्टाचार और व्यवहार कौशल को भुलाकर लोग सुबह, दोपहर, शाम बस मोबाइल में खोये रहने लगे हैं. मां-बाप के पास अपने बच्चों के साथ संवाद के लिए भी समय नहीं बचा है. यह मोबाइल का नशा व्यक्ति को परिवार और समाज से काटकर निठल्लेपन की अंधी गुफा की ओर धकेल रहा है. अब तो हालात ऐसे बने हैं कि जो आतिथ्य सत्कार कभी हमारी जीवन शैली का अनिवार्य अंग हुआ करता था, वह इस लत की गुलामी के कारण बोझ लगने लगा है. आपने ठीक ही कहा है कि ऐसे समय में बुद्धिजीवियों और साहित्यकारों को अधिक सतर्क रहना होगा. वे गफ़लत में रहें, तो सब तहस-नहस हो जायेगा.

अंक की सभी कहानियां पठनीय हैं और कुछ ऐसा कह रही हैं, जिसकी आज के समय में आवश्यकता है. 'सागर/सीपी', 'औरतनामा', 'आमने-सामने' स्तंभों के अंतर्गत दी गयी सामग्री भी पत्रिका के स्तर के अनुकूल है. इस बार की लघुकथाओं को पढ़कर लगा कि वे सचमुच लघुकथाएं हैं. इनमें अंतर्निहित कथा-तत्व ने प्रभावित किया है. 'इतिहास के खिलाफ़' लघुकथा का जवाब नहीं. कितने बुरे दिन आ गये हैं कि सदाचारी और ईमानदारी सरकारी मुलाज़िम में फर्जी होने की संभावनाएं खोजी जाने लगी हैं. यह इस कारण कि कदाचारी और बेईमानों की संख्या बढ़ गयी है. पठनीय रचनाओं के लिए सभी लेखकों को बधाई. अलास्का प्रवास के आधा दर्ज़न, छायाचित्रों ने अंक की उपादेयता को बढ़ाने में काफ़ी योगदान दिया है.

– युगेश शर्मा

'व्यंकटेश कीर्ति',
११, सौम्या एन्क्लेव एक्सटेंशन,
सियाराम कॉलोनी, चुनाभट्टी, कोलार रोड,
भोपाल-४६२०३९

▸▸ मैंने 'कथाबिंब' पत्रिका का नाम सुन रखा था. लेकिन देखने-पढ़ने का अवसर नहीं मिल पाया था. झांसी के कथाकार बृजमोहन जी ने पत्रिका की सदस्यता दिलवायी. पत्रिका को पढ़कर हार्दिक ख़ुशी हुई. इसके बाद मैंने अपनी कहानी भेजी 'महाठगिनी माया' जो पत्रिका के अप्रैल-जून २०१७ अंक में प्रकाशित हुई थी.

जुलाई-सितंबर २०१७ अंक प्राप्त हुआ है. अनुपम श्रीवास्तव जी की कहानी 'पांव बदलता सफ़र' तीन पीढ़ियों के सफ़र को उकेरती है. जीवन का यह क्रम निरंतर पीढ़ियों में हस्तांतरित होता हुआ विकास को प्राप्त करता है. राकेश भ्रमर की कहानी 'रेगिस्तान में बारिश' लड़का-लड़की में भेदभाव करने वाले परिवार पर तीखा प्रहार है. बेटी परिवार के भरण पोषण में अपनी जवानी अर्पण कर देती है वहीं बेटा शराबी कबाबी होकर भी मां का दुलारा बना रहता है. अंत में बेटी अपने निर्णय से मंज़िल की ओर बढ़ जाती है. रचनाओं के चयन में डॉ. माधव सक्सेना जी का अपना दृष्टिकोण है जो अन्य से अलग है.

– लखन लालपाल

नया रामनगर, उरई,
ज़िला-जालौन (उ. प्र.)-२८५००१

सिग्नल के पार ज़िंदगी

डॉ. लता अग्रवाल

लगभग हर रोज़ मेरा उससे सामना होता, मैला-सा पेटीकोट उस पर कभी कमीज़ तो कभी कंधों उतरता ब्लाउज़, जो किसी की मेहरबानी को दर्शाता. किसी साड़ी के टुकड़े को लज्जा वस्त्र बना ख़ुद को उसमें समेटने का असफल प्रयास करती वह, वैसे पुरुषों की नज़र से देखूं तो कोई विशेष आकर्षण नहीं था उस देह में या फिर रहा भी हो तो ग़रीबी का ग्रहण डस गया था. कंधे पर कपड़े की मैली-सी झोली लटकाये, नंगे पैर सड़क पर आवाजाही करती, फटी एड़ियां, पक्का रंग, दुबली काया.... गोद में कुपोषित बच्चा लिये जिसके चेहरे पर शायद जूठन लगने की वजह से मक्खियां भिनभिना रही होतीं. बोर्ड ऑफ़िस पर सिग्नल के लाल होते ही वह किसी अदृश्य शक्ति की भांति प्रकट हो, कार के कांच पर दस्तक देती. जैसे ही नज़र उस पर उठती, मन कसैला ही होता. पूरे बदन पर मैल की मोटी-सी परत जमी दिखायी देती. लगता काफ़ी अरसे से उसने कपड़ों की तरह ख़ुद को भी नहीं धोया है. उम्र कोई २२ से २५ के बीच रही होगी.

दयनीय मुद्रा में कभी बच्चे की ओर तो कभी अपने उभार लिये हुए पेट की ओर इशारा कर भिक्षा पात्र आगे कर देती. कार में बैठी अधिकांश सवारियां उसकी ओर नज़र उठाकर भी नहीं देखतीं, उसके प्रयास में कहीं कोई हताशा नहीं झलकती. शायद जानती है कि कार की तरह उनके दिल और आंखों में भी शीशे चढ़े हैं. कभी-कभार कोई संवेदनशील व्यक्ति कार का कांच खोल उसकी हथेली में एक सिक्का रख देता. सिग्नल के हरा होते ही फिर गाड़ियां उसके दायें-बायें से निकल जातीं. वह पुनः अपने नियत स्थान पर आ खड़ी होती और फिर अगली बार सिग्नल के लाल होने का इंतज़ार करती. बारिश में भी वह एक बड़ी-सी पॉलीथीन ओढ़े उसमें बच्चे को सिमटाये सिग्नल से अपना तालमेल बैठाती. मैं सोचती यह कैसी मां है जो अपने बच्चे को साथ ले सड़कों पर लोगों के आगे हाथ पसारे खड़ी रहती है. क्या हमदर्दी भी एक व्यवसाय हो सकता है इस कलयुग में? क्या ये अबोध बच्चे उसके इस व्यवसाय का जरिया हैं...? पता नहीं. मेरा रोज़ ही उस ओर से आना-जाना रहता. सोचती क्यों करती है यह ऐसा, आख़िर क्या मज़बूरी है...? यूं हादसों से लोहा लेती, क्या कोई और काम नहीं करने योग्य...? अनगिनत सवाल ज़ेहन में उठते और वह इन सबसे बेफ़िक्र अपनी ही धुन में रत...

हर साल उसकी स्थिति में इजाफ़ा यह होता कि गोद का बच्चा गले में बंधी झोली में आ जाता, झोली का बच्चा उंगली थामे मां का हमराह बनता, और पेट में एक नया बीज अंकुरित हो चुका होता. पिछले तीन वर्षों से कुछ ऐसा नाता हो गया कि सिग्नल पर रुकते ही मेरी नज़र उसे खोजती. सोचती क्या मुझे संवेदना है उस औरत के प्रति...? शायद नहीं... फिर क्यों हर रोज़ वहां से निकलते मेरी नज़रें उसके लिए बेताब हो जातीं...? फिर क्यों उसे लेकर कई सवाल ज़ेहन में कुदबुदाने लगते हैं... ? मुझे चिंता थी इस बात की कि कहीं किसी कार का पहिया उसे रौंदता हुआ न निकल जाये. कहीं उसकी अंतिम सांसें इन्हीं सड़कों पर किसी गाड़ी के पहिये तले तो नहीं लिखीं हैं...? उफ़! जाने क्या मज़बूरी है इसकी जो ये जोखिम उठाती है. प्रतिदिन सैंकड़ों लोग जो सुरक्षा के साथ सफ़र करते हुए भी हादसों का शिकार हो जाते हैं और यह औरत ख़तरों से बेपरवाह अपने साथ अपने बच्चों का जीवन भी दांव पर लगाये है.

हम शायद इसलिए डरते हैं कि हमारे बाद हमारे परिवार का क्या होगा, जतन से बसाया घर, तिनका-तिनका जोड़ी पूंजी का क्या होगा? लगता है इसके पास खोने को कुछ है ही नहीं इस तन के सिवा. जब पेट खाली होगा तो इस तन का भी क्या करेगी ...? सिग्नल बंद था या शायद ख़राब उस दिन, सिग्नल की लाइट के साथ भागने की जल्दबाजी जो नहीं थी. संयोग से उसका सामना कार वालों के बाद मुझसे हो गया. मैं मानो भरी बैठी थी...उलट पड़ी.

''तुम्हें डर नहीं लगता रोज़ इस तरह वाहनों के आगे आती हो. तुम्हारा पति कुछ नहीं कहता...?'' वह चुप हो गयी. शायद उसके पास मेरे इस प्रश्न का कोई उत्तर ही न हो...? शायद उसका कोई पति ही न हो...? या...या...उसने मेरे सवालों के जवाब देना उचित न समझा...? फिर ये बच्चे...? क्या इन बच्चों का कोई बाप नहीं...? तो क्या वह....? ऐसे कैसे हो सकता है उसमें तो ऐसा कोई आकर्षण नहीं... यदि ऐसा है तो क्या पुरुष सिर्फ़ स्त्री देह का प्यासा है चाहे वह किसी की भी हो...? क्या इन बच्चों की उनकी ज़िंदगी इसी सिग्नल के आस पास है...? अगर ऐसा है तो क्या चंद पैसों की ख़ातिर यह अपनी देह से खिलवाड़ नहीं कर रही...? अपने साथ बच्चों के भाग्य को भी धिक्कार नहीं रही ...? अफ़सोस! मेरे सारे प्रश्न अनुत्तरित रहे.

''ओ! मैडम...! ज़रा सम्हल कर... क्या घर से अनबन कर निकली हो...? सामने का वाहन नज़र नहीं आ रहा...'' अचानक सामने से आते वाहनवाले ने चिल्लाते हुए कहा.

''उफ़!'' ...इसका कुछ हो न हो इसके चक्कर में मैं ज़रूर हादसे की शिकार हो जाऊंगी. ''सॉरी भैया!'' कहते हुए मैंने अपनी राह ली.

बहुत दिनों तक वह वहां दिखायी नहीं दी. गुरूवार का दिन था साईं बाबा के दर्शन करती हुई घर जाती हूं. दर्शन कर जैसे ही बाहर निकली कतारबद्ध बैठे मांगने वालों पर नज़र गयी तो देखा वह तो यहीं बैठी है. ओह! उसका फूला हुआ पेट...तो क्या फिर...? हां! मेरा शक सही था. पास में एक बच्चा फटी और मैली–सी शर्ट पहने कटोरे में चंद सिक्के उछालकर ख़ुश हो रहा है, गोद में साल-सवा साल का बच्चा नंगे बदन, बहती नाक लिये उसके सूखे स्तनों को चूस रहा है. संभवतः बड़े पेट के कारण वह ठीक से बैठ भी नहीं पा रही थी. पैरों पर काफ़ी सूजन थी देखकर लगता था प्रसव का समय निकट आ गया है. मैंने उसके

जन्म : २६ नवंबर

शिक्षा : एम. ए. (अर्थशास्त्र, हिंदी) एमएड. पीएचडी.

: प्रकाशन :

कई शोधपत्रों के साथ राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय समाचार पत्र व पत्रिकाओं में प्रकाशन. आकाशवाणी व दूरदर्शन व साहित्यिक मंचों पर कविता, कहानी पाठ.

कविता संग्रह : मैं बरगद (बरगद पर १३१ कविताओं का संग्रह), 'आंचल' (मां पर १११ कविताओं का संग्रह)

बाल संग्रह : पुरस्कार, असर आपका बाल मनोविज्ञान ३. मेरा क्या कसूर ४. पुस्तक मित्र महान ५. मुझे क्यों मारा; अन्य रोल प्ले पर २० लघु पुस्तिकाएं

कहानी संग्रह : १. सिंदूर का सुख २. सांझी बेटियां

समीक्षा : पयोधि हो जाने का अर्थ, उत्तर सोमारु

शिक्षा : भाषा शिक्षण एवं शिक्षण विधियां, आओ जाने भाषा, खेल-खेल में भाषा, पाठ्यक्रम के पार भाषा, सूक्ष्म शिक्षण और अधीनस्थ प्रशिक्षण, हिंदी शिक्षण पाठ्योजना

: सम्मान :

कथाबिंब की ओर से कमलेश्वर स्मृति कथा सम्मान मुंबई; शिक्षा के क्षेत्र में योगदान हेतु सुशीला देवी भार्गव सम्मान आगरा; अखिल भारतीय भाषा सम्मेलन भोपाल की ओर से श्रीमती सुमन चतुर्वेदी स्मृति श्रेष्ठ रचना सम्मान; हिंदी लेखन हेतु मॉरीशस हिंदी साहित्य अकादमी द्वारा 'हिंदी रत्न'; शिक्षा के क्षेत्र में सराहनीय योगदान हेतु 'शिक्षा रश्मि'; निर्दलीय प्रकाश की ओर से श्रेष्ठ संभाषण एवं अलंकरण सम्मान भोपाल; राष्ट्रीय समता मंच दिल्ली द्वारा शैक्षिक व सामाजिक कार्यो हेतु 'स्वर्ण पदक'; बाल कल्याण एवं शोध शिक्षा संस्था द्वारा कहानी 'सूनी हथेली' पर 'कौशल्या गांधी पुरस्कार'; म. प्र. अग्रवाल महासभा भोपाल द्वारा प्रतिभा सम्मान; कलामंदिर परिषद भोपाल द्वारा 'माहेश्वरी सम्मान'; हिंदी साहित्य सभा आगरा द्वारा 'मनस्वी सम्मान'; समानान्तर साहित्य संस्था आगरा द्वारा 'सारस्वत सम्मान'; अन्य कई प्रशस्तिपत्र एवं सम्मान.

क़रीब जाकर बच्चे के हाथ में दो लड्डू प्रसाद स्वरूप रख उससे कहा, "तुम्हें तकलीफ़ है तो क्यों बैठी हो ...घर क्यों नहीं जातीं...? आराम करो जाकर."

मेरी बात सुन वह हल्के से हंस दी... जिसमें मुझे हंसी कम पीड़ा अधिक नज़र आ रही थी.

"घर! घर कहां है हमार...?"

"फिर कहां रहती हो..?"

"इ हा....ई हैं."

"तुम्हारा पति भी...?"

वह ख़ामोश हो इधर-उधर देखने लगी.

तो क्या इनका संसार यूं ही सड़कों पर...? उसकी ख़ामोशी चुभ रही थी मुझे.

"क्या वह कुछ नहीं करता...?

"उ कहां कुछ करता है. दारू पीके पड़ा रहता है."

"कितना कमा लेती हो इस तरह से..."

"बस २५-५० रुपया, कभी उ भी नहीं."

"क्या इससे पूरा पड़ जाता है...?"

"कहां..."

"फिर क्यों इस तरह सड़क पर मारी-मारी फिरती हो, ख़ुद को और बच्चों को भी जोखिम में डालती हो. कोई टक्कर मार गया तो ज़िंदगी भर को अपाहिज हो जाओगी. जानती हो ना...!"

वो मेरा मुंह तक रही थी,

"इससे तो अच्छा हो किसी के घर झाड़ू बर्तन कर कमा लोगी."

"कौन देगा हमें काम...? आप देंगी काम...?"

मैं अवाक ! इसकी तो उम्मीद ही नहीं की थी. अपने पर दांव देख झुंझला गयी मैं, ख़ुद को कोसती वहां से चल दी. नाटकबाज औरत है..., लोगों से सहानुभूति पसंद है उसे, मरने दो मुझे क्या...? अब नहीं पूछूंगी. ख़ुद को भाषण देती वहां से चल पड़ी, जानती जो थी भाषण से पोषण नहीं होता.

अब वह सिग्नल के पास दिखायी नही देती, उसने कारों का पीछा करना छोड़ दिया था, शायद! उसे मंदिर के अहाते की पनाह भली लगी...! या फिर यहां-वहां भागने की शक्ति नहीं रही उसमें... शायद! उस दिन भी गुरुवार था. मैंने देखा वह बैठी है पेट का वह बालक जो अब लगभग एक माह का हो गया होगा उसे कपड़े में कुछ इस तरह लपेट रखा था कि बस आंख ही दिखायी दे रही थी. वह उस बालक की दुहाई देकर भीख मांग रही थी. इतने नन्हें बालक को देख लोगों की संवेदना जाग रही थी. लोग पास बिछे कपड़े पर कुछ सिक्के डाल रहे थे. छोटा बच्चा उन्हें सहेजकर ढेर लगा रहा था. औरत बार-बार हथेली को सिर पर लगा, देने वालों का शुक्रिया अदा कर रही थी. मैंने उसे प्रसाद देते हुए पूछा, "क्या हुआ, बेटा या बेटी...?"

उसने मेरी बात को अनसुना कर दिया और मुझे अनदेखा. मैं एक बार फिर आहत हुई. एक अनपढ़ गंवार, मैली-कुचैली, जाहिल औरत से बार–बार अपमानित हो मन चोटिल हो गया. ख़ुद को कोसने लगी, आख़िर क्यों चली आती हूं बार-बार अपना अपमान कराने?"

तभी एक औरत जो शायद उसी की बिरादरी की थी. उसके पास बैठ भीख मांगती हो, उसकी प्रतियोगी शायद, एक वर्दी वाले को साथ लेकर आयी.

"देखो साब! इस बच्चे को, यही है वह जिसके बारे में मैं बता रही थी."

वर्दी वाला डंडा ठोंककर औरत को धमकाते हुए कह रहा था, "किसका है ये बच्चा?"

"साहब मेरा बच्चा है, सच्ची कह रही, भरोसा नहीं तो पूछ लो सबसे."

"साली! मुझे क़ानून बताती है. खोल इस बच्चे को... इस तरह क्यों लपेट रखा?"

देखते ही देखते भीड़ जमा हो गयी.

"खोलती है कि लगाऊं डंडा...?"

"खोलती है.... साब खोलती है..."

कहते हुए उसने प्रतिशोध भरी आंखों से उस औरत को घूरा... वह जो मानो अपनी जीत पर इठला रही थी. हां! उसकी प्रतिद्वंदी थी, बच्चे पर से कपड़ा हटते ही कुछ बदबू–सी महसूस की लोगों ने नाक पर कपड़ा लगा लिया.

तभी वह औरत चिल्ला पड़ी, "देखा साहब! मैं सही थी, ये बच्चा मर चुका है. कैसी कुलटा औरत है अभी भी उसके नाम पर मांग रही है."

लोग अचंभित थे....

वर्दी वाला चिल्लाया, "क्या यह सच है...? बोल सच क्या है...?" उसके डंडा खड़खडाने से दोनों बच्चे सहमकर औरत से चिपक गये.

"सच बताती है कि ले चलूं बड़े साहब के पास."

सरहद पर खड़ा बूढ़ा बरगद

✍ डॉ. दीपक कुमार पाल

एक शाख के पल्लवित दो फूल थे हम,
एक ही ज़मीं की दो फ़सलें,
हमारे मन-पिंजड़े में एक ही अनजाने पक्षी का आना-जाना,
हम तुम थे कितने अपने-अपने.
मेरे मंदिर-प्रांगण के वटवृक्ष पर
तुमने श्रद्धा के धागे बांधे,
मैंने भी चिराग़ जलाया तुम्हारे पीर-दरगाह पर.
एक ही सुख, एक ही दर्द की डोर में बंधे थे हम तुम,
एक ही आंसू बहाना, प्यास भी एक हमारी तुम्हारी.
भूगोल में, इतिहास में कब से थे हम एक दूजे के लिए,
हमारा तुम्हारा मन, माटी और ममता भी थी एक.
किन ख़ूनी हाथों ने उस दिन
बहा दीं ख़ून की नदियां,
चौखट हमारे तुम्हारे बीच —
रंग गयी ख़ून से.

हर रोज़, अख़बारों में बंटवारे का जश्न मनता है...
हमारे ही नेताओं ने पासपोर्ट और वीसा की दीवारों से
देश के दो टुकड़े कर दिये!!
उन दीवारों के झरोखे से —
बस एक बार कोई दिखा दे मुझे,
उधर पड़ोसी करीम का बेटा
आज कितना बड़ा हो गया?
और इधर अभागा राम दुलारे क्यों कर,
कुछ भी भुला नहीं पाता!
औरों की बातें तो छोड़ो —
सरहद पर खड़ा वह बूढ़ा बरगद...
उसे भी तो हम तुम भुला नहीं पाये.

✉ द्वारा श्री एस. पाल, मंत्री ट्रैन्क्युल ऑफ कनकपुरा रोड,
गुब्बालाला विलेज़, बैंगलूरु, कर्नाटक - ५६००६१.
स्थायी पता : १/१४२, तलैया लेन, फ़तेहगढ़ (उ. प्र.)- २०९६०१

वर्दी वाले ने ऊंचे स्वर में कहा.

इस बार वह कांपते हाथों को जोड़ बोली, ''नहीं साब बड़े साब के पास नहीं... वो मुझे बंद कर देगा... मेरे छोटे-छोटे बच्चे हैं साब कोई नहीं है उनका... मैं बताती हूं साब! सच्ची-सच्ची बताती हूं. ये बच्चा ज़िंदा नहीं है साब...''

''क्या...?''

सभी के चेहरे पर आश्चर्य के भाव थे.

''हां साब! यह मर गया है.''

''कब मरा...?''

''कल.''

''फिर इसे दफ़नाया क्यों नहीं. इस तरह लेकर क्यों घूम रही है...?''

''क्या करती साब! तीन पेट भूखे हैं. इस बच्चे को दिखाकर कुछ मांग लेती थी. सो परसों रात यह भी मर गया. सोचा एक दो दिन और मांग लूं फिर तो दफ़नाना ही है.''

✉ ७३ यशविला,
भवानीधाम फेस- १,
नरेला शंकरी, भोपाल- ४६२०४१
मो.- ९९२६४८१८७८

बड़ी होती लड़की

मानवी वहाणे

सूरज की पहली किरण अधखुली खिड़की पर लगे पारदर्शी पर्दों में से झांकते हुए बिस्तर पर निढाल लेटी हुई लड़की की बंद आंखों पर पड़ी. उसने अपनी आंखों का दरवाज़ा धीरे से खोला और अधखुली खिड़की की ओर ताकने लगी. वह ख़ुद को समेटते हुए बिस्तर पर से उठी और अधखुली खिड़की के पर्दों को परे हटाकर दुनिया देखने लगी. यहां से उसे सपनों से भरी एक दुनिया दिखायी देती थी, तितली-से रंग–बिरंगे सपने, मोती से अनमोल सपने, चिड़िया की तरह उड़ते हुए सपने, पेड़ों की तरह हरे–भरे सपने, कोयल की तरह गुनगुनाते हुए सपने, मोर की तरह थिरकते हुए सपने, सपने जो बारिश से भीगे हुए थे, सपने जो दीपक की तरह जगमग करते थे, अल्हड़ से सपने, खेलते–कूदते सपने, यहां से वहां तक सपने ही सपने बिखरे हुए थे...!

सपनों से भरी यह दुनिया भी उसकी तरह ही सूरज की पहली किरण के साथ जाग जाया करती थी. तब वह और दुनिया एक दूसरे के सामने खड़े होते थे, लेकिन क़रीब नहीं. उसकी दिली–ख़्वाहिश थी कि एक दिन वह ज़रूर इस दुनिया के पास चली जायेगी, और वहां बिखरे सपनों में से एक सपना अपने लिए भी चुनकर उसे अपनी आंखों में सजायेगी. उसे याद नहीं कि कब से, लेकिन जहां तक वह अंदाज़ा लगा सकती है, क़रीब चौदह–पंद्रह वर्ष बीते होंगे उसे खिड़की के भीतर की चार दीवारी में जीते हुए. लेकिन खिड़की के बाहर की दुनिया को देखते हुए तो महज़ दो–तीन वर्ष ही बीते हैं. इस पूरे क़िले में महज़ यही एक खिड़की थी, जो उसके नसीब से उसे अपने कमरे में मिली थी. लेकिन उस पर भी जादूगरनी उसे खिड़की नहीं खोलने देती थी, जादूगरनी के अनुसार न वह बाहर की दुनिया में जा सकती है और न ही बाहर की दुनिया को दूर से देख सकती है. उसका कहना है कि यह बुरा है... बहुत बुरा !

लेकिन लड़की कभी समझ नहीं पायी कि आख़िर बाहर की दुनिया में जाना या कम से कम उसे दूर से ही देख लेना, इसमें आख़िर बुराई ही क्या है? जब वह छोटी थी, तब जादूगरनी उसे कहती थी कि बाहर की दुनिया में बड़े–बड़े दांतों वाला राक्षस रहता है, अगर वह ग़लती से भी बाहर गयी तो राक्षस के मुंह का निवाला बन जायेगी. लड़की डर के मारे जादूगरनी के आंचल में छुप जाती, और जादूगरनी कहती कि —

'डरो नहीं, मेरे होते हुए तुम्हें कुछ नहीं होगा.'

लेकिन लड़की अब बड़ी हो रही थी, और समझने लगी थी कि राक्षस जैसा कुछ नहीं होता. लड़की अब कल्पनाएं करने लगी थी, ज़िंदगी के क्षणों को खेलते–कूदते हुए बिताने के बजाय, महसूस करके जीने लगी थी. उसे हर बात का कारण जानना होता था, आख़िर वह यहां क्यों है? कब से है? और बाहर की दुनिया में उसका जाना वर्जित क्यों है? लेकिन जादूगरनी इन सारे सवालों के जवाब कभी नहीं देती. लड़की कल्पनाएं करती रहती, कभी–कभी सोचती कि कहीं वह कहानियों की दुनिया वाली वह लड़की तो नहीं, जिसके सुनहरे और लंबे बालों के कारण दुष्ट जादूगरनी ने उसे क़ैद कर लिया है? फ़िर अपनी ही कल्पनाओं और सोच पर हंसने लगती... कहां हैं उसके पास सुनहरे लंबे बाल? और कहां है वैसी दुष्ट जादूगरनी? ज़रा इस जादूगरनी को देखो, यह मासूम और साफ़ दिल की है, उसने उससे कभी कुछ नहीं मांगा लेकिन जो लड़की ने उससे मांगा, वह

ज़रूर दिया. हालांकि, वह अब भी उसे बाहरी दुनिया में जाने की या दुनिया को देखने की इजाज़त नहीं देती. लेकिन लड़की जिज्ञासु है, छुप–छुपकर खिड़की से दुनिया को देखा करती है, इसी से अपनी जिज्ञासा को संतुष्ट करती है.

अचानक ही लड़की को अपने कंधे पर एक स्पर्श महसूस हुआ, उसने पलटकर देखा, क्रोध के मारे जादूगरनी की आंखें लाल–लाल हो गयी थीं. लड़की भीतर तक सहम गयी. जादूगरनी ने उसे बांह से पकड़ते हुए खींचा और कमरे से बाहर, सीढ़ियां उतरते–उतरते, नीचे तहख़ाने के सामने ले आयी. उसने तहख़ाने की कुंडी खोली और तहख़ाने के भीतर लगभग उसे धकेल–सा दिया. अंधेरे तहख़ाने में लड़की को अकेला छोड़कर, जादूगरनी ने बाहर से तहख़ाने की कुंडी लगा दी.

लड़की तहख़ाने के अंदर, उसके दरवाज़े से अपनी पीठ सटाकर बैठ गयी. यह तीसरी बार था जो उसे खिड़की से बाहर की दुनिया को ताकते हुए जादूगरनी ने पकड़ा और इस गंभीर जुर्म के लिए तहख़ाने में बंद कर दिया.

लड़की को याद है कि बचपन में (हालांकि, जादूगरनी के मुताबिक, वह अब भी छोटी ही है लेकिन वह खुद ऐसा नहीं समझती) जब वह कोई शरारत करती थी या जादूगरनी का कहा नहीं मानती थी तो जादूगरनी उसे तहख़ाने में बंद कर देती थी. लेकिन उसके कुछ ही क्षणों बाद, उसे तहख़ाने से बाहर निकाल लिया जाता क्योंकि वह तहख़ाने का दरवाज़ा पीट–पीटकर रोती और चिल्लाती थी, जिसके कारण जादूगरनी को उस पर दया आ जाती और वह उसे तहख़ाने से बाहर निकाल लेती. लेकिन अब लड़की को तहख़ाने में बंद होने पर रोना और चिल्लाना पसंद नहीं था. आख़िर तहख़ाने में ऐसा है ही क्या जिससे डरकर वह रोये या चिल्लाये? सिर्फ़ एक–दो छिपकलियां और दो–चार चूहे ही तो हैं, अब इनसे क्या डरना...!

पूरा दिन बीत गया, रात गहरी होने लगी. जादूगरनी ने नीचे तहख़ाने की ओर एक नज़र डाली. दिनभर से भूखी–प्यासी लड़की ने अब तक कोई आवाज़ नहीं लगायी, पहले तो वह इतनी बदतमीज़ न थी! तहख़ाना देखते ही माफ़ी मांग लेती थी या कुछ ही देर में रोने लगती थी, लेकिन अब देखो, अकडू कहीं की! इसका भी कोई स्वाभिमान है! हुंह!

अचानक ही जादूगरनी के मन में एक बात आयी, कहीं लड़की को कुछ...

स्नातक प्रथम वर्ष की छात्रा.

: प्रकाशन व पुरस्कार :

इंद्रप्रस्थ भारती, परिकथा, गृहलक्ष्मी, राजस्थान पत्रिका, सादर इंडिया, प्रतिलिपि पोर्टल, स्टोरी मिरर पोर्टल, स्वर्गविभा पोर्टल, कविशाला पोर्टल, नई कलम, कथांकन, आदि विभिन्न प्रिंट और ऑनलाइन पत्र–पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित.

आई सेक्ट यूनिवर्सिटी द्वारा प्रकाशित कथा संकलन - 'कथा मध्यप्रदेश' में एक कहानी प्रकाशित.

स्टोरी मिरर यूथ कान्क्लेव २०१६, अखिल भारतीय साहित्य परिषद, आदि द्वारा सम्मानित.

हिंदी ब्लॉग - manviwahane.blogspot.com

अंग्रेज़ी ब्लॉग - dreamswhichilive.wordpress.com

: संप्रति :

फ्री लांस हिंदी अनुवादक के रूप में सक्रिय.

जादूगरनी घबराते हुए नीचे आयी और तहख़ाने की कुंडी खोल दी. अंदर जाकर देखा, लड़की ज़मीन पर पड़ी थी, शायद बेहोश हो गयी! जादूगरनी की आंखों से झरझर आंसू बहने लगे. उसने लड़की का सिर अपनी गोद में रखा और उसके हाथ–पांव सहलाने लगी. अचानक ही लड़की ने हलचल की, उसने धीरे से अपनी आंखें खोलीं और जादूगरनी को टुकुर–टुकुर देखने लगी. जादूगरनी ने चैन की सांस ली, लड़की ठीक है, बस उसकी आंख लग गयी थी.

जादूगरनी लड़की को अपने साथ लेकर ऊपर अपने कमरे में आ गयी. उसने लड़की को अपने हाथों से खाना खिलाया. लड़की पालथी मारकर जादूगरनी के पलंग पर बैठ गयी. जादूगरनी उसका सिर सहलाते हुए बोली,

'तुम अगर बेकार की ज़िद नहीं करती तो यह सब नहीं होता.'

लड़की ने कुछ पल उसे देखा, फिर शांत स्वर में बोली, 'लेकिन इसमें हर्ज़ ही क्या है?'

'तुम समझती क्यों नहीं? ये ग़लत है, बुरा है. बाहरी दुनिया बुरी है, बेहद बुरी...!'

'उसमें कोई बुराई नहीं है, मैंने देखा है. वहां बस सपने हैं, ख़ुशनुमा सपने, आज़ाद सपने और मैं इस क़ैद से बाहर निकलकर उन आज़ाद सपनों को जीना चाहती हूं.'

जादूगरनी को झटका–सा लगा, 'क़ैद? अब यह घर तुम्हारे लिए क़ैद हो गया है?'

'नहीं, मेरा मतलब यह नहीं. लेकिन घर में अगर ज़िंदगी भर बैठे रहो तो वह क़ैद ही बन जाता है.'

'लेकिन यही सुरक्षित जगह है, सबसे सुरक्षित... तुम समझ नहीं रही!'

'लेकिन...'

'कोई लेकिन–वेकिन नहीं. आज से यही तुम्हारा कमरा है, तुम इसी में रहो. अब तुम उस खिड़की वाले कमरे में कभी नहीं जाओगी, कभी भी नहीं...!'

—जादूगरनी ने कहा और उस कमरे से चली गयी. लड़की को बेहद दुख हुआ, अब यह उसका नया तहख़ाना है!

वह बिस्तर पर लेट गयी और खिड़की, बाहर की दुनिया, उसके सपने... और उसके खारे आंसू जो तकिये में गुम हो रहे थे—इन सबके बीच गहरी नींद के आगोश में चली गयी.

☐

'डॉक्टर ! वह ठीक तो हो जायेगी न?' — प्रकृति ने तीसरी बार यह प्रश्न पूछा था. डॉक्टर ने अपना सिर हिलाया और गंभीर स्वर में कहा —

'वे बिल्कुल ठीक हो जायेंगी, बस उन्हें अपने अवसाद पर काबू पाने की ज़रूरत है. आप उन्हें एक-दो दिन में किसी अच्छे से मनोचिकित्सक के पास ले जाइए, इससे उन्हें मदद मिलेगी. अभी तो ख़ैर वे इंजेक्शन के असर के कारण गहरी नींद में हैं, डेढ़-दो घंटे में उन्हें होश आ जायेगा. मैं चलता हूं. टेक केयर ऑफ हर!' — डॉक्टर चले गये.

प्रकृति ने एक नज़र नींद में गुम रचना के मुख पर डाली, उसका सिर सहलाया और उसे चादर ओढ़ाकर किचन में चली गयी. दो दिन से मेड छुट्टी पर थी, रचना की तबियत और अपने जॉब के बीच प्रकृति का ध्यान किचन पर गया ही नहीं... पूरी तरह से बर्बाद हो गयी थी रसोई ! वाशबेसिन में झूठे बर्तनों का ढेर जमा हुआ था, सब्ज़ियां फ्रिज में पड़े-पड़े ही सड़ गयी थीं और किचनस्टैंड पर तो मानो बरसों की धूल जम चुकी थी!

वह साफ़-सफ़ाई करने में जुट गयी, जैसे ही सब कुछ निपटाया तो चाय की तलब जगने लगी. उसने दूध का पतीला गैस पर चढ़ा दिया, वहां दूध उबल रहा था तो यहां उसके भीतर बीते दिनों की स्मृतियां उबलने लगीं...

'रचना! रचना! उठो...!'

रचना ने आंखें मसलते हुए टाइम देखा, सुबह के दस बजे थे! वह झट से उठकर बैठ गयी.

'इतना लेट हो गया, तूने मुझे जगाया क्यों नहीं?' — रचना ने शिकायती स्वर में कहा.

प्रकृति कुर्सी खींचकर बैठ गयी और बोली, 'अरे! मैं तुझे कबसे तो उठा रही हूं और तू मुझे ही डांट रही है! हद है यार!'

'ओह, सॉरी यार. रात को देर तक काम करती रही तो नींद भी देर से आयी और देख, उठी भी देर से. चल, मैं फ्रेश हो जाती हूं, तू मेरे लिए चाय बना देगी?'

'यह भी कोई पूछने वाली बात है? अभी बना देती हूं.' — अपनी उसी पुरानी मुस्कुराहट के साथ प्रकृति उठी और किचन में चली गयी.

रचना जब नहा–धोकर बाहर निकली तो प्रकृति ने चाय और गरमा–गरम पोहे बनाकर टेबल पर रखे थे. अपने गीले बालों को टॉवल में लपेटते हुए रचना ने कुर्सी खींची और बैठ गयी.

'आज तो किराया भी देना है, सुमिता आंटी आयी नहीं क्या?' चाय की चुस्की लेते हुए रचना ने पूछा.

प्रकृति ने अपना सिर हिलाते हुए कहा, 'नहीं यार. वैसे भी मुझे नहीं लगता कि वे आज किराया लेने आयेंगी.'

'क्यों? उनकी तबीयत ठीक नहीं है?'

'क्या पता...? पर इधर कुछ दिनों से आस–पड़ोसियों में चर्चा हो रही है कि उनके घर में कुछ हुआ है... शायद उनकी बेटी के साथ... इसलिए...'

'ऐसा क्या हुआ है? कहीं कोई गंभीर बात तो नहीं...?'

'हो सकता है...' — प्रकृति ने कहा और टेबल पर रखी प्लेट्स उठाकर किचन में चली गयी.

रचना को कुछ ध्यान आया और उसने अलमारी में कपड़ों के नीचे दबी अपनी डायरी बाहर निकाली. 'मेरा सपना... कहानियां लिखना ही मेरा सपना है. मैं कई बार यह कह चुकी हूं.'

'फिर...?'

'फिर भी मेरा मन नहीं भरता. न यह बताने से और न ही लिखने से. जैसे यह क़लम मेरा शरीर है और कहानी मेरी आत्मा... कुछ-कुछ ऐसा ही महसूस करती हूं.'

'अच्छा...! तो क्या मुझे एक पेन से प्यार हो गया है?'

'हां शायद...'

वह मुस्कुरायी, पर वैसे नहीं जैसे हमेशा मुस्कुराती थी, यह थोड़ी अलग मुस्कुराहट थी.

'कहां खो गयी?'

'कहीं नहीं... तुम भी तो कुछ कहो, हमेशा मेरी ही सुनते हो.'

'सुनना अच्छा लगता है, विशेषकर तुम्हें...'

वह फिर मुस्कुरायी बिल्कुल उसी तरह.

'मुझे भी बोलना अच्छा लगता है, लेकिन आज तुम कुछ कहो, मैं सिर्फ़ सुनना चाहती हूं.'

'अपनी तारीफ़?'

'मैंने ऐसा कब कहा? तुम कुछ भी कह सकते हो.'

'कुछ भी...?'

'हां, कुछ भी.'

'मतलब कोई पाबंदी तो नहीं है न?'

'नहीं बाबा.'

'तो सुनो, तुम हमेशा यह औरतों के मुद्दे, उनकी तकलीफ़ें, उनका दर्द और उनके सपने, इन सबसे हटकर भी कुछ लिखा करो.'

'जैसे कि...?'

'जैसे कि...कभी प्यार के बारे में भी तो लिखो.'

'प्यार...'

रचना आगे नहीं लिख पायी, प्रकृति कमरे में आ गयी थी.

'तू क्या कर रही है ?'— प्रकृति ने बिस्तर पर धम्म से बैठते हुए पूछा.

'अं...मैं तो बस डायरी लिख रही थी. तुझे पता है न?'– रचना ने अपना मोबाइल डायरी के बीच दबाते हुए कहा.

'हां... वो तो मैं देख ही रही हूं, कि आजकल डायरी में से मोबाइल-स्क्रीन का फ़्लैश भी निकलने लगा है!'— प्रकृति ने हंसते हुए कहा. रचना का चेहरा सुर्ख़ लाल हो गया.

'अभी तक चैट पर ही अटकी है, बात आगे बढ़ा यार, कोई मीटिंग-वीटिंग फ़िक्स कर.'

'अब ऐसा भी कुछ नहीं है.'— रचना ने अलमारी में डायरी रखते हुए कहा.

'ऐसा नहीं है तो कैसा है?'— प्रकृति ने रचना के गले में अपनी बांहें डालीं.

'ऐसा, वैसा, कैसा, कुछ भी नहीं है !'— रचना ने उसे झिड़कते हुए कहा.

प्रकृति ने मुंह बनाया,

'देखते हैं!'

'क्या देखते हैं प्र...' — रचना प्रकृति पर तकिए से वार करने ही वाली थी कि वह अपनी जीभ दिखाकर उसे चिढ़ाते हुए कमरे से बाहर भाग गयी.

'बीप! बीप!' — रचना का मोबाइल शोर मचाने लगा.

'तुमने रिप्लाई क्यों नहीं किया? मेरी बात बुरी तो नहीं लगी न?'

'नहीं-नहीं!' — रचना फटाफट टाइप करने लगी.

'वो तो मेरी रूम मेट आ गयी थी न, तो मैं उससे बात करने लगी थी. तुम्हारी बात का बुरा क्यों लगेगा भला!'

'तो हम क्या बात कर रहे थे...'

'ही इज़ टाइपिंग' — देखकर रचना के मन में गुदगुदी होने लगी, न जाने वह क्या कहेगा?

'...प्यार... इस पर कुछ क्यों नहीं लिखती?'

'अनुभव नहीं है न...'

'किसका? लिखने का या प्यार का?'

'दोनों...'

'हम्म...'

— इसके बाद कुछ मिनटों तक जवाब नहीं आया तो रचना को लगा कि कहीं उसने कुछ ग़लत तो नहीं लिख दिया? वह टाइप करने ही वाली थी कि दूसरी ओर से रिप्लाई आ गया,

'देखो, लिखने का अनुभव तो तुम्हें खुद ही हासिल करना होगा लेकिन...'

'लेकिन क्या?'

'तुम चाहो तो मैं तुम्हें प्यार का अनुभव दे सकता हूं...' — साथ में ब्लिंक इमोज़ी था.

रचना को आभास हुआ मानो अनगिनत तितलियां उसके भीतर फड़फड़ाने लगी हैं, उससे जवाब देते ही न बना.

'शरमा गयी?'

'नहीं.' — किसी तरह से टाइप किया.

'मैं तुमसे मिलना चाहता हूं.'

रचना ने मोबाइल एक तरफ़ पटका और तकिए में अपना मुंह छिपा लिया.

'बीप! बीप!'

उसने मोबाइल को पुनः उठा लिया, 'नहीं मिलना चाहती तो कोई बात नहीं...'

'ऐसी कोई बात नहीं है, हम मिल सकते हैं...' — रचना ने बमुश्किल अपनी मुस्कुराहट पर काबू करते हुए मैसेज़ भेजा.

'ओके डन! आज शाम को फ्री हूं मैं. एड्रेस सेंड कर रहा हूं, तुम ख़ुद आ जाओगी या मैं तुम्हें पिक-अप करने आऊं?'

'नहीं. आई विल मैनेज़.'

'बाय. शाम को मिलते हैं.'

'ओके बाय.'

रचना मोबाइल रखकर अपनी अलमारी में से शाम को पहनने के लिए ड्रेस सिलेक्ट करने लगी, इस बीच प्रकृति दोबारा उसके कमरे में आयी थी और जब उसने अलमारी के सारे कपड़ों में तहलका मचाने का कारण पूछा तो रचना ने शर्माते-मुस्कुराते हुए उसे सब कुछ बता दिया.

'ओह वाओ !' प्रकृति लगभग चीख़ी लेकिन अगले ही पल गंभीर होते हुए बोली, 'तुझे नहीं लगता कि यह कुछ जल्दी हो रहा है?'

'जल्दी?' रचना चौंक गयी, 'अभी कुछ देर पहले तो तू ही बोल रही थी कि मीटिंग-वीटिंग फ़िक्स कर और अब कह रही है कि जल्दी हो रहा है!'

'हां यार, वो क्या है न कि आजकल ज़माना ठीक नहीं है!'

'ज़माना तो कभी ठीक नहीं था प्रकृति' रचना ने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा, 'और वह अच्छा इंसान हैं. ट्रस्ट मी !'

'आई ट्रस्ट यू बेब्स, लेकिन फिर भी...'

'ओह कम ऑन प्रकृति ! अब मूड मत ख़राब कर. वह अच्छा इंसान है और उसने स्त्री वाद के क्षेत्र में बहुत काम किया है, सो उससे मुझे कोई नुकसान तो पहुंच ही नहीं सकता! चिल.'

रचना बेहद खुश थी उस दिन, प्रकृति को आश्वस्त करके वह ऋषभ से मिलने के लिए उसके घर चली गयी थी. प्रकृति को लगा था कि वह कम से कम एक-दो घंटे बाद ही घर लौटेगी लेकिन वह हैरान रह गयी जब रचना आधे घंटे के भीतर ही घर वापिस चली आयी.

'क्या हुआ रचना? तू इतनी जल्दी क्यों...' इससे पहले कि प्रकृति कुछ पूछ पाती, रचना उसके गले से लगकर फफक पड़ी.

'ही इज़ अ बास्टर्ड, प्रकृति!' — रचना ने रोते हुए कहा.

'तू शांत हो जा यार, थोड़ा पानी पी और फिर बता कि क्या हुआ...' प्रकृति ने किसी तरह से उसे शांत किया.

'ही इज़ अ बास्टर्ड, प्रकृति...' रचना बताने लगी, ऋषभ के घर पहुंचने के बाद उन दोनों के बीच बमुश्किल दस मिनट तक ठीक से बात हुई होगी कि ऋषभ ने अपना असली रंग दिखाना शुरू कर दिया. वह रचना को छूने की कोशिश करने लगा और जब रचना ने उसे इसके लिए फटकार लगायी, तो वह बड़ी ही बेशर्मी के साथ बोला —

'आई थॉट यू लव मी...'

'आई लाइक यू, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि तुम मेरे साथ...'

'तो फिर तुम मुझसे मिलने क्यों चली आयी?'

यह सुनकर रचना को झटका-सा लगा, 'मुझे अगर पता होता कि तुम इतने गिरे हुए हो तो कभी न आती !' वह अपना बैग उठाकर वहां से जाने लगी तो ऋषभ ने उसकी कलाई मरोड़ दी, 'हाउ डेयर यू ! तुम जैसी दो कौड़ी की लड़कियों का मोटिव नहीं जानता क्या मैं? पहले फ्रेंड रिक्वेस्ट, फिर चैट वग़ैरह, तुम करैक्टर लेस लड़कियां ख़ुद ही इनवाइट करके बेचारी बनती हो!'

'तड़ाक !' — एक ज़ोरदार तमाचा ऋषभ के दाहिने

गाल पर पड़ चुका था, रचना ख़ुद को बचाकर वहां से तुरंत निकल आयी.

'दैट बास्टर्ड ! हाउ डेयर ही... चल, पुलिस कम्प्लेंट लिखवाते हैं !' — प्रकृति ग़ुस्से से तिलमिला उठी थी लेकिन रचना ने उसे यह कहकर चुप करा दिया था कि वह ख़ुद ही बेवकूफ़ों की तरह ऋषभ से मिलने के लिए तैयार हो गयी थी, इसीलिए कम्प्लेंट लिखवाने का कोई मतलब नहीं, बात बाहर जायेगी तो सब उसे ही ब्लेम करेंगे.

प्रकृति को उसकी बात सही लगी थी, तब उन दोनों ने यही सोचा था कि जो हुआ सो हुआ, बात को यहीं ख़त्म कर देना उचित है.

'लेकिन बात तो उसके बाद और भी ज़्यादा बिगड़ गयी...' — प्रकृति सोच रही थी.

दूसरे ही दिन ऋषभ और उसके चमचों ने सोशल मीडिया पर रचना को लेकर तरह-तरह की बातें फैलाना शुरू कर दिया, पहले-पहल तो रचना इन सभी बातों का जवाब देती रही लेकिन हद तो तब हो गयी जब उसे किसी ने कॉल करके पूछा — 'कितना लेती हो?'

प्रकृति और रचना ने तुरंत पुलिस में कम्प्लेंट की पर इसका भी कोई फ़ायदा नहीं हुआ, सोशल मीडिया पर फैली हुई यह गंदगी निजी जीवन में भी अपने पैर पसारने लगी थी. रचना के दफ़्तर और पड़ोसियों में भी उसे लेकर खुसुर-फुसुर शुरू हो चुकी थी. प्रकृति ने बहुत कोशिश की कि रचना का मनोबल बना रहे लेकिन रचना दिन-ब-दिन अवसाद से घिरती जा रही थी, कल तो वह बेहोश ही हो गयी! प्रकृति कितना घबरा गयी थी, वो तो अच्छा हुआ कि डॉक्टर सही समय पर पहुंच गये और उन्होंने रचना का चेक-अप कर लिया लेकिन प्रकृति को अब भी विश्वास नहीं हो रहा था कि उसे रचना को एक मनोचिकित्सक के पास लेकर जाना होगा ! उसकी बेस्ट फ्रेंड की यह हालत, बस एक छोटी-सी ग़लती की वजह से...

'नहीं! रचना की कोई ग़लती नहीं, सारा दोष उस ऋषभ का है! ब्लडी बास्टर्ड !' दूध पतीले में से उफनकर बाहर निकलने ही वाला था कि प्रकृति ने गैस बंद कर दी, 'पर हम भी उसे नहीं छोड़ेंगे. ही हैस टू पे फॉर दिस! रचना इतनी कमज़ोर नहीं है, उसे थोड़ा संभालना होगा बस. फिर दिखाते हैं इस ऋषभ के बच्चे को कि रिवेंज़ क्या होता है !' — ऐसी तरह-तरह की बातों को सोचते हुए वह चाय पी रही थी कि तभी उसके मोबाइल पर किसी का कॉल आया.

'स्मिता? अब इसे क्या चाहिए यार!' — प्रकृति ने कॉल रिसीव करते हुए सोचा.

'हाय प्रकृति! कैसी है तू ?'

'आई एम गुड, तू कैसी है?'

'मैं भी ठीक ही हूं...' — कुछ क्षण मौन रहने के बाद स्मिता ने धीरे से पूछा — 'और रचना...वो ठीक है न?'

'हां, बस...' — प्रकृति को समझ ही नहीं आ रहा था कि क्या कहे, लेकिन अगले ही पल स्मिता ने जो बताया उसे सुनकर वह बुरी तरह से चौंक गयी, 'तूने वह पिक देखी क्या?'

'कौन सी पिक?'

'वही रचना वाली...'

'तू किस बारे में बात कर रही है स्मिता? क्लियरली बोल न!'

'रुक, मैं तुझे सेंड करती हूं.' कहकर स्मिता ने कॉल कट कर दिया.

'बीप! बीप!' — प्रकृति ने मैसेज़ खोलकर देखा तो मोबाइल उसके हाथ से गिरते-गिरते बचा.

मैसेज़ में रचना की एक न्यूड तस्वीर थी जिसके नीचे स्मिता ने लिखा था — 'यह पिक सोशल मीडिया पर वायरल हो रही है!'

प्रकृति ने तुरंत लॉग इन किया, वाक़ई वह तस्वीर हर पोस्ट पर दिखायी दे रही थी और उसके नीचे कमेंट्स तो ऐसे-ऐसे किये गये थे कि प्रकृति का जी मिचलाने लगा.

'यह फ़ोटो तो रचना की ही है बट आई थिंक, किसी ने मॉर्फ्ड की है!' — प्रकृति सोचने लगी,

'अगर रचना को यह दिख गयी तो? वो तो पहले से ही डिप्रेशन में है... ओह नो ! ज़रूर यह उस कमीने ऋषभ ने ही किया होगा ! उसे तो मैं नहीं छोडूंगी! पर पहले इस तस्वीर का कुछ करना होगा...' — प्रकृति ने साइबर सेल में कार्यरत अपने एक दोस्त को तुरंत कॉल लगाया और उसे सारी समस्या बतायी, उसके दोस्त ने उसे आश्वासन दिया कि वह इस तस्वीर को जल्द से जल्द सोशल मीडिया से हटवा देगा. प्रकृति ने यह सुनकर चैन की सांस ली ही थी कि उसे ध्यान आया, 'रचना के कमरे से उसका मोबाइल ले आती हूं, कहीं वह उठ गयी और उसने देख लिया तो...'

— वह तेज़ क़दमों से रचना के कमरे में गयी कि अचानक ही उसका पैर फिसलते-फिसलते बचा, 'व्हाटद...' फ़र्श पर नज़र पड़ते ही उसके होश उड़ गये, 'रचना...!'

रचना की कटी हुई कलाई से बहता रक्त फ़र्श पर फैलता जा रहा था... एक ओर ब्लेड पड़ी हुई थी तो दूसरी ओर उसका मोबाइल जिसकी स्क्रीन पर उसकी न्यूड तस्वीर चमक रही थी....

यह सब देखकर प्रकृति की आंखों में आंसुओं की धारा फूटकर फ़र्श पर फैले रचना के रक्त में जा मिली... दुनिया की तमाम हिम्मतें आज रक्त व आंसुओं की उस मिली-जुली नदी में बह गयी थीं...

□

'यह लो, थोड़ी ठंडी हो जाओ.' — अजय ने पाखी की तरफ़ कोक का कैन उछालते हुए कहा; जिसे उसने लपककर कैचकर लिया. एक सिप में आधा कैन ख़ाली कर दी लेकिन कंबख़्त पानी की प्यास पत्थर पर खिंची लकीर की तरह जस की तस; अडिग, अमिट बनी रही. चेहरे पर जैसे अंगारे फूट रहे थे, उसे आशंका थी कि कहीं ये अंगारे पिंपल बनकर न उभर आयें.

उसका शरीर पसीने से तर-बतर हो रहा था, कपड़े ऐसे भीगे कि निचोड़े तो दो बाल्टी भर जायें. लेकिन यह मुंबई की उमस भरी दोपहरी तो नहीं थी, पर भोपाल का हाल भी उससे कुछ कम नहीं है इन दिनों.

भोपाल से कुछ ही किलोमीटर आगे थी वह, पर उसे ऐसा लग रहा था मानो वह जैसे कई सालों पीछे आ गयी हो...

'मैं ऐसे केस बार-बार देखने के बाद भी इनका आदी नहीं हो पाता हूं.'

'होना भी नहीं चाहिए अजय' — पाखी ने उसकी बात बीच में ही काट दी, 'जिस दिन हम इन बातों को सहने के आदी हो गये, उस दिन हम सचमुच इंसान कहलाने लायक नहीं रह जायेंगे. सिर्फ़ हाड़-मांस का वह शरीर बनकर रह जायेंगे जो महसूसने के अतिरिक्त सब कुछ कर सकता है. क्या तुमने कभी सोचा है कि संवेदनहीन इंसान कैसा होता है...?'

अजय ने अबोध बालक की तरह सिर हिलाया.

'...उस कैनवास की तरह जो बेजोड़ चित्रकारी से भरा पड़ा है लेकिन उसके चित्रों में रंग ही नहीं हैं... जीवन तो है पर जीवंतता नहीं है.'

'पर कैसे हैवान हैं यार !' — अजय ने उसके ज़िक्र पर अपनी घृणा व्यक्त की.

'ऐसा कहकर तुम हैवान की इंसल्ट कर रहे हो.' — पाखी ने कोक की अंतिम सिप लेकर कैन को पास पड़े डस्टबिन में फेंक दिया. 'टन्न' की आवाज़ हुई और अजय ने एक अनुभवी रिपोर्टर की तरह सवाल दागा, 'तो पाखी जी, क्या आपको लगता है कि हैवान की भी कोई इज़्ज़त होती है?'

'इज़्ज़त न सही, पर हैवान और उसकी हैवानियत की भी अपनी कुछ सीमाएं ज़रूर होती हैं लेकिन ऐसे दुष्कृत्य करनेवालों के लिए न तो मानवता की सीमा मायने रखती है और न ही हैवानियत की.'

'तो तुम इन्हें क्या नाम दोगी?' — उसने पूछा.

'इन्हें कोई नाम नहीं दिया जा सकता अजय और न ही हमें देना चाहिए. मुझे नहीं लगता कि हमें परिभाषित करने की ज़रूरत है, सच तो यह है कि हमें केवल परिवर्तनों की आवश्यकता है... परिभाषाओं की नहीं.'

अजय ने उसकी ओर ऐसी दृष्टि से देखा, जैसे उसके भीतर की कोई तह हटाना चाहता हो पर अपनी चाहत में लीन वह, नहीं जानता कि अपने भीतर की तहों को अपने ही भीतर समेटे रखने का पाखी का अभ्यास वर्षों पुराना है. एक दिन की कोशिश वर्षों के अभ्यास में बाधा नहीं बन सकती, अतः तहों की परख पड़ताल करने में वह नाकामयाब ही रहा और अपनी नाकामयाबी से उपजी निराशा को परे धकेलने के लिए धीरे से बोला, 'पर यही तो हमारा काम है पाखी, परिभाषाएं देना ! नहीं?'

इतना कहकर वह पुनः उसी दुनिया में व्यस्त हो गया जहां वह उसके साथ रोज़ काम करता है.

वह अपने कैमरे में आज सुबह रिकॉर्ड किया गया इंस्पेक्टर विशाल का स्टेटमेंट देख रहा था और पाखी उसे, यह सोचते हुए कि क्या बस परिभाषाएं देना ही हमारा काम है? उसका मन था कि पूछे, क्या परिवर्तन लाना या लाने की कोशिश करना, हमारे कामों की गिनती में नहीं आता अजय?

पर वह नहीं पूछ पायी. उसके प्रश्न मन से तो निकले लेकिन होंठों पर आकर ही ठहर गये, ठीक वैसे ही जैसे कभी आंखों से निकले आंसू पलकों में आकर कहीं अटक

जाते थे क्योंकि वह अपनी सारी शक्ति लगाकर उनके आवेग को रोकने का प्रयत्न करती रहती थी. पर अब ऐसे प्रयत्नों की ज़रूरत नहीं रही ज़िंदगी में, कारण कि उसके पिछले जख़्मों के आंसू इस तरह सूखे कि अब आंखें बंजर हो गयी हैं.

अजय के कैमरे की खटर-पटर से उसका ध्यान भंग हुआ. उसे पुनः वही शब्द सुनायी देने लगे जिन्होंने आज सुबह ही उसके कानों को छलनी किया था. कैमरे की ओर देखते-देखते, जैसे वह उसी की दुनिया में विचरण करने लगी....

इंस्पेक्टर विशाल अजय को बता रहे थे कि अपराधी को हिरासत में ले लिया गया है. उनके पास सबूतों की एक लंबी फ़ेहरिस्त थी जिसके विषय में वे क्रमानुसार बताते जा रहे थे —

'आरोपी के कपड़ों पर लगा ख़ून, उसके शरीर पर लगी खरोंचों की डीएनए जांच से पुष्टि हुई कि वह 'बेटी' का ही ख़ून है....'

अपनी फ़ेहरिस्त की शुरुआत उन्होंने ऐसी बात से की, कि उसके बाद कही गयी बातें महज़ पाखी के कानों से टकरा रही थीं और जो बात दिमाग़ की दीवारों को ठोंक-पीटकर उसे माइग्रेन की असहनीय पीड़ा दे रही थी, वह यह थी कि हैवान से बदतर उस प्राणी के कपड़ों पर लगा ख़ून 'बेटी' के शरीर का तो हरगिज़ नहीं हो सकता ! क्या जांच करनेवाले इतने बेवकूफ़ थे कि जान ही नहीं पायें कि जो ख़ून उन्होंने जांचा, वह शरीर का नहीं बल्कि सपनों का था! वे सपने जो अभी ठीक से देखे भी नहीं गये थे और उन्हें मसलकर उस हैवान से बद्तर प्राणी ने यह सुनिश्चित कर दिया कि आनेवाले समय में भी वे सपने कभी न देखें जायें.

उसने इंस्पेक्टर विशाल को देखा, वो अब भी डॉक्टर की रिपोर्टों में पाये गये सबूतों और 'बेटी' की हालत के बारे में सब कुछ ऐसी सहजता से बताते जा रहे थे जैसे यह बड़ी आम बात हो, पर वह भी कैसी पागल है! आख़िर उनके लिए तो यह आम बात ही थी, वे अजय की तरह यह नहीं कहनेवाले थे कि —

'मैं इन सबका आदी नहीं हो पाया हूं...'

और यदि वे कह भी देते तो कौन-सा वह उनकी बात पर विश्वास कर पाती?

क्योंकि वह देख सकती थी कि उस पांच साल की 'बेटी' की हालत देखकर भी उनकी पलकें भीगी नहीं थीं, हृदय द्रवित नहीं हुआ था; वे ख़ाकी में थे तो क्या? ऐसा नियम कहां है कि ख़ाकी पहनने के बाद व्यक्ति को मशीन की तरह काम करना पड़ता है? न शोषकों से घृणा होती है और न ही शोषितों के प्रति सहानुभूति !

पर वह तब भी लगातार उन्हें ही देखे जा रही थी, इस उम्मीद में कि शायद कहीं बीच में वे असहज हो जायें, उनकी आंखों में कुछ तैरे पर वे अपने अनुशासन की ख़ातिर आंखों को कठोरता से झपकाकर नियंत्रित करें.

पर अफ़सोस कि ऐसा कुछ नहीं हुआ....

सरकारी अस्पताल की दीवारों से भी अधिक नीरसता दिखी उनकी आंखों में.

हालांकि, जिस सरकारी अस्पताल में पाखी खड़ी थी, वहां की दीवारों के साथ-साथ डॉक्टर भी बड़े ही नीरस थे. फ़ीके सफ़ेद कोट पहने और गले में स्टेथोस्कोप लिये डॉक्टरों की वही पुरानी, घिसी-पिटी-सी कहानी—बीमारी से लगाव है, बीमारों से नहीं!

पर इन नीरस डॉक्टरों से बातचीत करना और इनका स्टेटमेंट लेना उसकी विवशता थी.

हालांकि, मुर्दा–शांति से भरे ये डॉक्टर उसे विचलित करने में असमर्थ थे पर वहां की नर्सों की खुसर-फुसर ने उसे अपरिचित रूप से बेचैन कर दिया. समीप ही खड़ी उन दो नर्सों की बातें अब भी पाखी के मस्तिष्क के भीतर मानो आपस में ही संघर्ष कर रही हैं. वह पहली नर्स उस दूसरी नर्स को 'बेटी' की हालत के बारे में बता रही थी और दूसरी, पहली को अपनी हालत के बारे में — 'उसके आसपास होना भी मुझे बेचैन कर देता है. वो पांच साल की बेटी, हममें से किसी की भी बेटी हो सकती थी बल्कि सच तो यह है कि वह हमारी ही बेटी है. एक ऐसी बेटी जिसने हमारी आत्मा को उसका असली चेहरा दिखा दिया है.'

नर्स की भीगी हुई आंखें एक विशेष दिशा में जाकर ठहर गयीं, वहां जहां किसी विशेष वार्ड में 'बेटी' का कमरा था. और पाखी के क़दम ख़ुद-ब-ख़ुद उस दिशा में बढ़ते जा रहे थे. स्वयं पर कोई नियंत्रण ही नहीं था मानो, ऐसा लगा कि कोई चुंबकीय शक्ति उसे अपनी ओर खींचे जा रही है.

पर उसने अपने क़दमों को वहां रोक दिया, जहां से उसे सब कुछ सिर्फ़ धुंधला-धुंधला ही दिखाई दे; वह प्रत्यक्ष साक्षात्कार नहीं चाहती थी.

लघुकथा

मन्नत

डॉ. नीना छिब्बर

धर्मस्थल शिरडी नित्य ही श्रद्धालुओं से भरा रहता था, पर गुरुवार को तो जैसे समुद्री लहरों के समान भक्तजन अपनी आस्था, विश्वास, श्रद्धा और शंका समाधान साईं चरणों में अर्पित करने के लिए उत्सुक रहते थे. मंदिर के बाहर दान-पुण्य करने वालों की भीड़ लगी थी. कुसुम दो दिनों से यहीं थी और आसपास के वातावरण का आनंद ले रही थी. चारों तरफ़ सकारात्मक ऊर्जा थी. उसने देखा कि एक वृद्ध स्त्री अन्य वृद्ध स्त्री-पुरुषों को कुछ कहने की कोशिश कर रही थी. वह किसी भी युवा से बात नहीं कर रही थी. मात्र वृद्धों से! जब कुसुम ने क़रीब जाकर बात करनी चाही तो पहले तो उसने जवाब नहीं दिया पर उसके बार-बार कुरेदने पर ज्वालामुखी के लावे-सी फूट पड़ी. उसने बताया कि वह सत्तर वर्ष की है. उसके पुत्र व पुत्रवधू ऐसे ही किसी गुरुवार को अपनी मन्नत पूरी करने उसे बड़े प्यार से यहां लाये थे. बहुत ख़ुश थी वह कि तीर्थ-यात्रा पर जा रही है. दो दिन तो पूजा-आरती भजन में कैसे बीते, पता ही नहीं चला पर शनिवार को संध्या आरती के बाद मंदिर के बाहर खड़ा करके कहा कि मां आप यहीं खड़ी रहिए कहीं जाना नहीं हम होटल से सामान लेकर आते हैं. पर बेटी तब से आज तक वे नहीं आये. वह अनपढ़ बेचारी घर का पूरा पता भी नहीं जानती है.

कई माह-वर्ष बीत गये पर विश्वास नहीं कर पाती कि उसके बेटे की मन्नत मां से छुटकारा पाना थी. कुसुम ने उस वृद्धा को जब अपने घर ले जाना चाहा तो उसने कहा कि नहीं वह यहीं रहकर हर वृद्ध को यही समझाने की चेष्टा करती है कि अपने बच्चों के साथ तीर्थ-यात्रा पर आने से पहले उनकी मन्नत क्या है पता लगा लेना?

१७/६५३, चौपासनी हॉउसिंग बोर्ड, जोधपुर-३४२००८. मो. : ९४६१०२३३१९

एक आदमी उसके सिरहाने बैठा, उसका सिर सहला रहा था. दूर होने के बाद भी, पाखी स्पष्ट देख सकती थी कि वह उसका पिता था, वात्सल्यपूर्ण पिता; मात्र पुरुष नहीं!

और उसके समीप जो औरत बैठी थी, उसे देखकर पाखी समझ नहीं पायी कि वह कौन थी?

अगर वह मां थी, तो उसकी स्थिर दृष्टि अपनी बेटी पर क्यों नहीं थी? कुछ था उसके हाथ में, जिसमें वह बुरी तरह से खोयी हुई थी.

और उसके पास में ही एक-दो वृद्ध स्त्रियां थीं, उनकी कोई रिश्तेदार या जान-पहचान वाली ही होंगी.

उनके बीच सांकेतिक भाषा में कुछ बातें हो रही थीं जो पाखी को सुनायी भले न दें, पर फिर भी वह समझ पा रही थी कि वे क्या बातें रही होंगी?

वही प्रश्नावली, कब हुआ? कैसे हुआ? किसने किया? ऐसे अनगिनत प्रश्न जो गर कानों से टकरा जायें तो लगता है जैसे कई-कई रक्त पिपासु कीड़े शरीर को नोंच खाने के लिए उसके ऊपर छोड़ दिये गये हैं.

आख़िर कोई यह क्यों नहीं पूछता कि हुआ ही क्यों? नहीं होना चाहिए था न...

एक जगह पर ठहरा हुआ पानी भी सड़ जाता है और यहां ज़िंदगी ऐसे ठहर-सी गयी कि वह कुछ समझ ही नहीं पायी. दूसरों के प्रश्नों के उत्तर देते-देते, उसके अपने प्रश्न कहीं गुम हो गये; और जो पूछना स्मरण था उसे कहने के लिए वह साहस नहीं जुटा पायी.

इतनी दूर से भी स्पष्ट दिखायी देती 'बेटी' पाखी की आंखों के सामने थी; हॉस्पिटल बेड पर अचेत और एक 'बेटी' उसके भीतर थी, जागृत, स्मृतियों के कुएं खोदती हुई...!

न जाने कितने ही कुएं वह उसके भीतर खोद चुकी है! जो कुछ हुआ, उससे जूझकर आगे बढ़ जाने का अर्थ यह तो नहीं है न कि पीछे का सब कुछ छोड़ ही दिया जाये.

पर उसके भीतर की 'बेटी' यह नहीं समझ पाती कि पीछे गयी चीज़ें छोड़ी नहीं जातीं, वे खुद-ब-खुद छूट जाती हैं या छुड़ा दी जाती हैं और हम चाहकर भी उन्हें पुनः नहीं पा सकते. पर उस 'बेटी' ने अपनी भ्रांतियों में इतने कुएं खोदे हैं पाखी के भीतर कि उनमें उतरने के बाद उसकी प्यास नहीं बुझती, बल्कि और बढ़ जाती है; मृगतृष्णा है यह, मृगतृष्णा!

'तुम्हें कब से ढूंढ़ रहा था मैं! यहां खड़े-खड़े क्या कर रही हो?' अजय ने उसके कंधे पर हाथ रखा तो वह उन गहरे कुओं से एक ही क्षण में बाहर निकल आयी.

'यहां क्या कर रही हो तुम?' — उसने पुनः पूछा.

'मैं वो...कुछ नहीं. बहुत प्यास लग रही है, मैं पानी पीकर आती हूं.' — पाखी तेज़ी से उस ओर बढ़ी जहां वॉटर-प्योरिफ़ायर लगा हुआ था. शीघ्रता से गिलास में पानी भरकर अपने गले में उड़ेल लिया. उसके कपड़ों पर काफ़ी सारा पानी गिर गया लेकिन उसने उस ओर ध्यान दिये बिना, पानी पीना ज़ारी रखा. ऐसा लग रहा था मानो वह जन्मों की प्यासी हो पर जब उसे आभास हुआ कि उसके पीछे भी कोई प्यासा खड़ा है, तो वह प्योरिफ़ायर के सामने से हट गयी और वापिस आने लगी.

तभी अचानक उसे कुछ अजीब लगा, वह पीछे पलटी; क्या ये वही दो औरतें थीं जो उस कमरे में...?

'उनके सामने बात करना अच्छा नहीं लगता. वही एक बात बार-बार करो, पता नहीं मां-बाप पर क्या बीतती होगी?'

'बीतेगी नहीं क्या? मन्नत से मांगी बेटी थी उनकी! जहां लोग वंश चलाने के लिए बेटा मांगते हैं, वहीं इन्होंने बेटी मांगी थी. कैसे हाथ-हाथ में ही रखते थे, बिल्कुल गुड़िया की तरह. सबकी लाड़ली, बेचारी बच्ची!'

'बेचारे मां-बाप! किसी आदमी को इतना फूट-फूटकर रोते हुए मैंने कभी नहीं देखा और मां को तो कुछ होश ही नहीं है. बस वही खिलौना लेकर बैठी रहती है, उसे जोड़ने की कोशिश करती रहती है, सदमे में है शायद!'

'हां, वह खिलौना बड़ा पसंद था उसकी बच्ची को. कहने को तो इतने खिलौने हैं उसके पास लेकिन वह हमेशा इसी से खेलती और टूट जाता तो अपनी मां से उसे वापिस जोड़ने को कहती...'

उन दोनों औरतों की बातें अविराम चल रही थीं लेकिन पाखी का मन तो बस एक शब्द पर ही आकर ठिठक गया, खिलौना...!

वह बहुत तेज़ क़दमों से वापिस उसी कमरे की तरफ़ गयी, उसके साथ उसके भीतर की 'बेटी' भी जैसे दौड़ लगा रही थी. और वे दोनों पुनः उस कमरे से एक निश्चित दूरी पर जाकर खड़े हो गये, ताकि वे उन्हें स्पष्ट देख सकें पर दूरी का आवरण उनकी दृष्टि को पाखी तक पहुंचने से रोके रहा.

हां, वह औरत सही कह रही थी. मां के हाथ में कोई खिलौना था, शायद टूटा हुआ, जिसे जोड़ने के लिए वह बार-बार कोशिश कर रही थी लेकिन फेविक्विक खिलौने की बजाय उसकी उंगलियों पर चिपकता जा रहा था.

पाखी ने ध्यान से देखा, वह खिलौना प्लास्टिक का एक कार्टून कैरेक्टर था. बिल्कुल वैसा ही एक खिलौना उसके पास भी था, बस उसका रंग हरे के बजाय नीला था और वह अपने बचपन में उस खिलौने से बहुत खेला करती थी.

वह उसका पसंदीदा खिलौना था...

'अब छोड़ दो उसे. थोड़ा पानी पी लो.' उस आदमी ने कहा लेकिन उसकी पत्नी उस खिलौने में ही उलझी रही.

'तुम छोड़ क्यों नहीं देती उसे?' — आदमी का स्वर तेज़ हो गया था, औरत ने कातर नेत्रों से उसे देखा, 'वह उठेगी तो मांगेगी न... इसलिए मैं...'

आदमी ने खिलौना उसके हाथ से छीनकर ज़ोर से कमरे के बाहर की ओर फेंका, 'क्या मांगेगी? टूटा हुआ खिलौना या टूटा हुआ बचपन?' और अपनी पत्नी के गले लग कर फफक पड़ा.

पाखी आगे बढ़कर उनसे कहना चाहती थी कि बचपन टूटा नहीं था, बस ज़िंदगी की आंधियों में कहीं गुम हो गया था पर उसके क़दम सामने पड़े खिलौने को देखकर ठिठक गये.

वह खिलौना उससे चार क़दम दूर था और वह उससे बीस साल...

उनके बीच खड़ी 'बेटी' कभी पाखी को देखती तो कभी उस खिलौने को; जो बुरी तरह से टूट चुका था, अब की बार कभी न जुड़ने के लिए...

□

'सत्य है! सत्य है!' — आंसुओं व रक्तधाराओं के कंधों पर सपनों की शवयात्रा निकल रही थी — यह हर उम्र की औरतों के सपनों की लाशें थीं... सपने जो झुलसे हुए, जले हुए थे — उन औरतों के थे जो जला दी गयीं.

क्योंकि उन्होंने एक्स की जगह वायक्रोमोज़ोम अपने भीतर लेकर बेटी पैदा की थी, या वे ख़ुद वायक्रोमोज़ोम से उपजी-बेटी बनके पैदा हुईं, उन्होंने प्रेम किया या प्रेम निवेदनों को ठुकरा दिया... उन्हें जलाने के भी कई साधन

थे, केरोसिन, माचिस या एसिड...

कुछ सपने जो काटकर छिन्न-भिन्न, क्षत-विक्षत कर दिये गये, उन्हीं औरतों के थे जो चाकू, आरी, कुल्हाड़ी, आदि औज़ारों से बार-बार लगातार काटी गयीं...

पर जब दुनिया जलाने, काटने, दफ़नाने का ख़र्चा न उठा पायी तो औरतों को मारने के सबसे सरल साधनों का ईज़ाद किया गया...

शैय्या पर अपने नीचे कुचल दो मर जायेंगी!

बिना कुचले, बस कुचलने की बातें ही कर दो — मर जायेंगी !

कुचलने की बात न करके भी, बस इशारे ही कर दो — मर जायेंगी!

औज़ार की ज़रूरत नहीं रह गयी जब औरतें शब्दों से ही मारी जाने लगीं... इन मरी हुई औरतों के साथ ही मर जाते हैं इनके सपने भी... आंसू व रक्तधाराएं ढोती हैं इनके शव, अंतिम-संस्कार भी होता है लेकिन रूहें मुक्त नहीं हो पातीं ! वे अपने जले, सड़े, दफ़नाये गये शवों के आसपास ही भटकती रहती हैं... यह दुनिया जो सपनों से भरी दिखायी देती है, दरअसल सपनों की लाशों की दुनिया है...!

'नहीं!' — लड़की स्वेद व अश्रुओं से तर-बतर, बिस्तर पर उठकर बैठ गयी.

'क्या हुआ बेटी? तुम ठीक तो हो?' — जादूगरनी ने उसकी चीख़ सुनकर कमरे में भागते हुए प्रवेश किया.

'नहीं! नहीं!' लड़की ने रोते–बिलखते हुए जादूगरनी के वक्ष में अपना मुंह छिपा लिया.

'मैंने बहुत बुरे... बहुत-बहुत बुरे सपने... देखे...' — लड़की हिचकियां लेते हुए बोली.

'वे सपने नहीं थे!' जादूगरनी ने उसका सिर सहलाते हुए कहा, 'हक़ीक़त थी बल्कि है! यह हक़ीक़त है उसी सपनों से भरी दुनिया की जिसे तुम मेरे लाख मना करने के बाद भी खिड़की से झांककर देखा करती थी.'

लड़की की आंखें हैरानी और भय के मारे फटी की फटी रह गयीं, जादूगरनी सच ही तो कह रही थी ! उसने भी तो देखी सपनों की अनगिनत लाशें, लगातार दो बुरे सपने महज़ सपने नहीं हो सकते, यह यक़ीनन सच्चाई थी! तभी तो जादूगरनी हमेशा उसे चेताया करती थी न!

लड़की पुनः जादूगरनी के हृदय से लग गयी, 'मैं नहीं देखूंगी! कभी नहीं देखूंगी उस दुनिया को! जाना तो दूर की बात, जाने के बारे में सोचूंगी तक नहीं!' — लड़की ने अपने आश्चर्य, भय और आंसुओं को साक्षी मानकर क़सम खा ली थी.

जादूगरनी के मुख पर एक विजयी मुस्कान तैरने लगी, वह एक हाथ से लड़की का सिर सहलाती रही और वहीं उसने अपने दूसरे हाथ से लड़की के तकिए के नीचे छिपाकर रखा हुआ बुरे सपने दिखानेवाला यंत्र सावधानीपूर्वक निकाल लिया.

कुछ देर बाद लड़की पुनः निद्रा में चली गयी. जादूगरनी उसका माथा चूमकर कमरे से बाहर निकल आयी.

'अंततः मैं सफल हुई ! अब यह कभी भी बाहरी दुनिया को देखने की ज़िद नहीं करेगी.' — वह मन ही मन मुस्कुराते हुए सोच रही थी.

'हा! हा! हा !' — अचानक ही एक अनपेक्षित अट्टहास सुनकर वह चौंक उठी. आवाज़ दाहिनी ओर स्थित तीन कमरों के बाद वाले कमरे से आ रही थी. वह कमरा जादुई यंत्रों का कमरा था!

'यहां कौन हंसा?' वह कमरे के भीतर पहुंचकर इधर-उधर देखने लगी.

'हा! हा! हा!' — अट्टहास पुनः गूंज उठा.

'अब भी नहीं समझी क्या माया?' एक पुरुष-स्वर था.

जादूगरनी समझ गयी कि यह आवाज़ कहां से आ रही है, वह कमरे में रखी एक बड़ी-सी अलमारी से ठीक सटाकर रखे गये उस दर्पण के सामने जाकर खड़ी हो गयी,

'तुम हंस क्यों रहे हो दर्पण?' — जादूगरनी ने उससे पूछा.

दर्पण में एक धुंधली इंसानी शक़्ल उभर आयी, उसी शक़्ल ने कहा — 'मूर्खता पर हंसते ही हैं माया!'

'कैसी मूर्खता? किसने की?'

'स्वयं को विजयी मान लेने की मूर्खता, जो तुमने की है !'

जादूगरनी हतप्रभ रह गयी, 'यह तुम क्या बोल रहे हो दर्पण? मैं विजयी हुई हूं! मैंने उसे विश्वास दिला दिया है कि बाहरी दुनिया बुरी है, बहुत बुरी! वह उस ओर जाना तो दूर, जाने के बारे में सोचेगी भी नहीं!' — जादूगरनी गर्वित भाव से बोली.

दो ग़ज़लें

✍ नवीन माथुर 'पंचोली'

बात जिसमें सच बहुत है ।
बात वो मुश्किल बहुत है ।

है हंसी रुख पर उसी के
साथ जिसके ग़म बहुत है ।

आदतन चुपचाप है जो,
प्यार के काबिल बहुत है ।

काम मुश्किल है उसी का,
जो यहां बे-दम बहुत है ।

रोब उसका है जहां में,
पास जिसके फ़न बहुत है ।

चाहे सबसे यारी रख ।
हमसे दुनियादारी रख ।

जीवन में थोड़ी-थोड़ी,
ग़म से साझेदारी रख ।

रात कटी मदहोशी में,
दिन से दूर ख़ुमार रख ।

अपनी-अपनी कहता है,
कुछ तो बात हमारी रख ।

सांसों में भरकर अपनी,
यादें मीठी खारी रख ।

✉ **अमझेरा, जिला धार (म. प्र.). मो. : ९८९३११९७२४**

'यही तुम्हारी मूर्खता है माया! वह सोचेगी, देखेगी और वहां जायेगी भी... ज़रूर जायेगी एक दिन. वह अब कोई बच्ची नहीं है जिसे तुम बहला-फुसला सको.'

'लेकिन वह इतनी बड़ी भी नहीं हुई...'

'वही तो माया !' — दर्पण में उभरी इंसानी शक़्ल पुनः खिलखिला कर हंस पड़ी, '... वह नदी है जो अब मचलती नहीं है लेकिन अभी ठहरी भी कहां है?

वह सांझ है, दिन की पूरी रोशनी और रात के पूरे अंधेरे के बीच का समय !

वह बच्ची नहीं है माया पर बड़ी भी नहीं हुई... वह बड़ी होती लड़की है...!

भय और उदासियों से घिरकर भी, वह सपने देखना नहीं छोड़ेगी और हर बार, तुम उसके सपनों को नियंत्रित भी नहीं कर पाओगी.

वह सोचेगी, देखेगी और वहां जायेगी भी...ज़रूर जायेगी एक दिन उस दुनिया में, सपनों को जियेगी, पूरा करेगी... सपनों की लाशों से बच्चे भयभीत हो सकते हैं, बड़े निराश हो सकते हैं लेकिन वह बच्ची नहीं है माया और बड़ी भी नहीं हुई... वह बड़ी होती...'

'धम्म...!' — जादूगरनी ने कोई भारी-सी वस्तु दर्पण पर फेंककर मार दी,

'चुप्प! वह नहीं जायेगी वहां, मतलब नहीं जायेगी ! मैं विजयी हुई हूं ! सुना तुमने? मैं विजयी हुई हूं!' — जादूगरनी ने चीख़ते हुए पुनः उस दर्पण पर कुछ फेंका, अब की बार दर्पण तड़-तड़कर के टूट गया और उसके टुकड़े ज़मीन पर फैल गये.

'मैं विजयी हुई हूं... वह नहीं जायेगी उस दुनिया में, कभी नहीं जायेगी...' जादूगरनी बड़बड़ाते हुए अपने कमरे में चली गयी.

ठीक आधी रात को, जादुई यंत्रों वाले कमरे की ज़मीन पर टूटे-बिखरे पड़े हुए दर्पण में इंसानी शक़्ल पुनः उभर आयी थी और हौले-हौले मुस्कुरा रही थी...

कि लड़की के पुराने कमरे की खिड़की फिर खुली थी और ठंडी हवा में बहते हुए सपने, तारों की तरह टिमटिमाते हुए सपने, चांदनी में स्नान करते सपने खिड़की से सटकर खड़ी हुई लड़की की आंखों में उतर रहे थे...!

✉ ***के-५८, सरोजिनी नगर,***
नयी दिल्ली- ११००२३.
मोबाइल – ९११३२१३४६६००
ईमेल – manviwahane@gmail.com

अमावस का चांद

शकुंतला पालीवाल

वो लगभग हांफता हुआ-सा, पसीने में तर-बतर पगडंडी से रोड तक पहुंच पाया था, एक नज़र चारों ओर दौड़ायी, दूर-दूर तक सिर्फ़ बालू-रेत फैली हुई थी, सूरज पूरे जोश में चमक रहा था. जेठ का महीना यूं भी कुछ कम गर्म नहीं होता. भरी दुपहरी में कहीं सिर छिपाने को दूर-दूर तक कोई पेड़ नज़र नहीं आता. कोई ढाणी, झोंपड़ी जहां तनिक विश्राम के साथ अपना गला तर कर सके. प्यास से उसके ओंठ सूख रहे थे, पसीने में नहाया लगभग बेदम बदहवास–सा भूरिया चलता जा रहा था. किसी ठौर की तलाश में, जहां पल दो पल सुस्ता सके. इस यायावर ज़िंदगी में कुछ पलों का ठौर उसे नसीब हो. उसे बहुत दूर जाना है, जाना कहां है, नहीं मालूम, न जाने किस ठौर इन थके क़दमों को आसरा मिलेगा? ये अंतहीन सफ़र किस घड़ी और किस जगह जाकर ख़त्म होगा, यह तो भूरिया ख़ुद भी नहीं जानता, ऐसा नहीं है कि भूरिया अनाथ है और ग़रीब है. हां, बहुत अमीर घर नहीं था भूरिया का मगर दाल-रोटी नसीब हो जाती और गुज़र-बसर आसानी से हो जाती. भूरिया इन रेतीले धारों वाले प्रदेश का नहीं था, वह तो हरे-भरे देश का वासी था. जिधर देखो उधर हरियाली, घने पेड़, जंगल, पगडंडी के दोनों तरफ़ लगे फलों से लदे पेड़, जो राहगीर को छाया भी देते और सफ़र की क्षुधा भी शांत करते. राहगीर इन राहों में अपनी थकान भूल जाता. ऐसी ही ख़ूबसूरत वादियों में बसा छोटा–सा गांव सुंदनपुर. हां, भूरिया के गांव का यही नाम था, गांव में क़दम रखते ही पहला घर उसका ही था, उसके घर के बाहर से ही होकर शहर जाने की पगडंडी गुज़रती थी. चौड़ा बरामदा, बीच में खुला आंगन जहां तुलसी का बिरवा घर की शोभा बढ़ाता था, दो कमरे और पीछे छोटी बाड़ी, जहां घर के लिए ज़रूरी साग-सब्ज़ी उगायी जाती, वहीं पास ही कुइंया थी जिसका पानी बहुत मीठा था. आते-जाते राहगीर कुइंया का मीठा पानी पी कर निहाल हुए जाते. कभी भी सब्ज़ियां बाज़ार से नहीं ख़रीदनी पड़तीं, एक दुधारू गाय. एक छोटी बछिया और बैलों की एक सुंदर जोड़ी. तीन बीघा ज़मीन थी उसके बापू के पास. बापू हल जोतते, खेती करते और परिवार की गुज़र-बसर करते. यूं ही ज़िंदगी गुज़र रही थी. घर में सिर्फ़ तीन सदस्य थे, मां, बापू और ख़ुद भूरिया. भूरिया बीते दिनों की याद में खो गया. उसके सूखे ओंठ उसके घर की मीठी कुइंया का पानी पीने को तरस रहे थे, भूरिया को याद आया, कैसे वो आये हुए राहगीरों को दौड़-दौड़ कर पानी पिलाता. राहगीर आशीषों की झड़ी लगा देते, मां दूर खड़ी मुस्कुराती रहती. मां उस पर कितना स्नेह करती, सारी ममता और प्रेम उड़ेलती उस पर, उसकी बलाइयां लेती, नज़र उतारती. बापू कभी खुल कर प्रेम नहीं जताते मगर भूरिये की हर ज़रूरी, ग़ैर ज़रूरी ख़्वाहिश पूरी करने की हर जुगत करते. इसी से भूरिया दिन-ब-दिन ज़िद्दी और उद्दंड होता जा रहा था, कुछ तो किशोरावस्था का प्रभाव और कुछ ग़लत संगत का असर. भूरिया पास ही के गांव में पढ़ने जाता था. असल में नाम तो उसका संदीप था. भूरिया नाम तो उसकी भूरी आंखें, भूरे बाल और गोरे रंग की वजह से पड़ गया था. लोग उसे संदीप कम और भूरिया नाम से ही ज़्यादा पुकारते. वह ख़ुद भी भूरिया नाम का आदी हो चुका था. धीरे-धीरे भूरिया में विद्रोही प्रवृत्ति बढ़ने लगी. ग़लत संगत के लड़के उसे उकसाते, आख़िर वह घर का इकलौता लड़का है, घर का चिराग. उसकी हर इच्छा तो

पूरी होनी ही चाहिए. बापू सीधा सादा काम से काम रखने वाला आदमी, रौबीला व्यक्तित्व, गांव का मोतबीर. नपी-तुली बात करता, पर जो कहता तोल-मोल कर वो सोलह आना सच होता. गांव में हर कोई उसका मुरीद था, सभी उसकी इज़्ज़त करते. भूरिये की मां भूरिये के आगे-पीछे नाचते नहीं थकती थी, उसे भूरिया हमेशा कमज़ोर नज़र आता. कुछ खाता-पीता नहीं, यही उसकी शिकायत होती थी. जब बापू कभी भूरिया पर ग़ुस्सा करते तो मां ही थी जो बीच-बचाव कर हमेशा भूरिये का पक्ष लेती और बापू को चुप करा देती. लेकिन बापू को भूरिया के लक्षण ठीक प्रतीत नहीं हो रहे थे. एक शाम साथ में खाना खाते बापू बोला — भूरिया, मैं देख रहा हूं कि तेरा ध्यान पढ़ाई में कम और आवारागर्दी में ज़्यादा रहता है, सुधर जा, यही समय है, सही रास्ता अपना. भूरिया नीची गर्दन कर सुनता रहा.

असल में भूरिया के संस्कार ग़लत नहीं थे. भूरिया मां-बापू की बहुत इज़्ज़त भी करता था. आये-गये का बहुत मान भी करता था. घर के कामों में छोटी-मोटी मदद भी कर देता था. बस उमर के असर से ग़लत संगत में पड़ गया था. लेकिन भूरिया ग़लत संगत से जल्द ही उबर भी गया, उसने ठान ली कि अब वह ग़लत संगत से हमेशा कोसों दूर ही रहेगा और मां-बापू का संस्कारी बच्चा बन के रहेगा. काम में हाथ बटायेगा, ख़ूब मन लगा के पढ़ेगा और मां-बापू का नाम रोशन करेगा. भूरिया जी तोड़ मेहनत करने लगा. एक दिन भूरिये का सहपाठी सोहन जो कि बहुत ही शरारती और उद्दंड था. उनकी सहपाठी गांव की कमली को छेड़ने लगा. भूरिये से रहा नहीं गया, भूरिये ने सोहन को टोका — ''सोहन मान जा, क्यों छेड़खानी करता है, कमली हमारी छोटी बहन समान है.'' इस पर सोहन बोला — ''बहन होगी तेरी, तू क्यों बीच में पड़ता है.'' सोहन गांव के बड़े पंच का बेटा था, उसे इस बात का बहुत गुमान भी था. भूरिया भी आवेश में आ गया, दोनों गुत्थमगुत्था हो गये. मार–पीट बढ़ गयी, दूसरे सहपाठियों ने मिल कर दोनों को छुड़ाया. तब तक भूरिये का बापू सब देख चुका था. भूरिये के बापू की आंखों में क्रोध के लाल डोरे देख भूरिया सहम गया. बापू ने भूरिये की कोई सफ़ाई नहीं सुनी, उल्टे उसे पीट दिया. वो भी उसके सभी दोस्तों और उस सोहनिये के सामने. भूरिया बहुत शर्मिंदा हुआ.

भूरिये को जैसे बहुत बड़ी ठेस लगी. किशोर मन

३ मई १९८०

शिक्षा : एम. एससी. (कृषि जैव प्रौद्योगिकी एवं आण्विक जीव विज्ञान), एम. ए. (हिंदी साहित्य).

कार्यक्षेत्र : सहायक कृषि अधिकारी.

: लेखन :

अनेक विधाओं में लेखन (हाईकू, कहानी लेखन, कविता लेखन, लघुकथा लेखन आदि) कविताएं, लेख एवं लघुकथाएं पत्र-पत्रिकाओं एवं समाचार पत्रों में प्रकाशित. प्रथम काव्य संग्रह प्रकाशन हेतु तैयार.

बहुत आहत हुआ. वैसे भी १६-१७ बरस की उमर ही कुछ ऐसी होती है, बगावत विद्रोह के तेवर इसी उम्र में देखे जाते हैं. इस उमर के बालकों को सिर्फ़ उनका दोस्त बन कर ही उन्हें समझाया जा सकता है, बाक़ी और कोई दूसरा रास्ता नहीं. आहत मन से भूरिया घर तो लौटा मगर बिना कुछ खाये–पिये लेट गया. उसकी आंखों से नींद कोसों दूर थी. नहीं चाहिए उसे ज़िल्लत भरी ज़िंदगी. अब वो एक पल भी यहां नही रुकेगा. कहीं दूर चला जायेगा तब सबको याद आयेगी इस भूरिये की. यही कुछ सोचते-सोचते भूरिया तड़के जल्दी ही गांव की पगडंडी पर पत्थर ढोने वाले ट्रक में सवार हो सुंदनपुर छोड़ कर निकल पड़ा. उसने अपना जी कड़ा कर लिया, कभी पलट कर भी नहीं देखा और यूंही ख़ानाबदोश जीवन जीते उसे पूरे चार बरस गुज़र गये. कभी-कभी उसकी आंखों के सामने ममतामयी मां का चेहरा घूम जाता, मन करता अभी घर की राह लूं, फिर बापू का ग़ुस्से से भरा लाल-पीला चेहरा देख अपना निर्णय ख़ुद ही ख़ारिज कर देता. फिर सोचता, आख़िर कब तक यूं ही ज़िंदगी गुज़र बसर होगी. ट्रक वाले कई ड्राइवर उसके जान-पहचान वाले हो गये थे. उन्हीं में से एक ट्रक ड्राइवर सरदार सिंह उससे ख़ास लगाव रखता था, वो अक्सर कहता — ''भूरिया, मेरा बेटा भी तेरी ही उमर का है, एक साल से

उसे नहीं देखा, उसकी छवि मुझे तुझमें दिखती है. बापू नारियल की तरह होते हैं, बाहर से एकदम सख़्त मगर भीतर से नरम दिल होता है रे उनका. और फिर तू तो उनकी इकलौती संतान है. भगवान जाने, तेरे मां-बाप तेरे बिछोह में कैसे दिन गुज़ार रहे होंगे?'' सरदार सिंह की बातों से भूरिये का दिल पसीज गया. उसे याद आने लगा — कैसे उसका बापू उसे कंधे पर बिठा कर गांव का, खेत का चक्कर लगाता. उसकी हर ख़्वाहिश पूरी करता. भूरिये की आंखों में चमक आ गयी. सरदार सिंह से बोला — ''बाबा, क्या मैं फिर से घर जाऊं तो वो मुझे कुछ नहीं कहेंगे, मतलब डांटेंगे तो नहीं, भूरिये ने बड़ी ही मासूमियत से पूछा. उसके इस मासूम सवाल से सरदार सिंह की आंखें भी नम हो गयीं. वह बोला — ''मां-बाप तो हमेशा अपनी संतान का भला ही चाहते हैं और फिर तेरे अलावा उनका है ही कौन? तू अगर सीधे घर नहीं जाना चाहता तो तू उनको ख़त लिख दे. मैं तेरा ख़त उन तक पहुंचा दूंगा, जो वो न माने तो तू मेरे साथ चल देना, मेरा यक़ीन कर, मैं तुझमें और अपने बेटे में कभी फ़र्क नही करूंगा. अमावस की रात तेरे घर के सामने से हो कर आगे गुज़रेंगे, जो उनका इशारा मिला तो तू रुक जाना और अगर ना मिले तो तू मेरे साथ चल देना.''

बहुत हिम्मत जुटा कर भूरिये ने ख़त लिखा —

'आदरणीय मां-बापू!

प्रणाम, आप दोनों कैसे हो, मुझे आप दोनों की बहुत याद आती है, मैं घर लौटना चाहता हूं, आप दोनों की रजामंदी हो तो अमावस की रात आंगन में तुलसी के पौधे के पास एक दिया जला देना, इसे मैं आपकी हां समझूंगा और अगर नहीं तो...'

आपका बदनसीब बेटा
भूरिया

आगे उससे कुछ भी लिखा नहीं गया, आंखों से बारिश होने लगी, एक बार सब तरफ़ धुंधलका छा गया.

ख़त उसने सरदार सिंह को थमाया. सरदार सिंह सुंदनपुर होते हुए ही आगे बढ़ता था, रास्ता भी वही था, मौक़ा देख कर सरदार सिंह ने भूरिये का लिखा ख़त उसकी गुवाड़ी में डाल दिया. जब कुछ दिनों बाद भूरिये का सरदार सिंह से मिलना हुआ तो भूरिया बोला — बाबा, ख़त पहुंच तो गया ना? किसी ने तुम्हें देखा तो नहीं? क्या तुमने मां-बापू को देखा?

सरदार सिंह बोला — ''तुमने तो एक साथ सवालों की झड़ी लगा दी, तुम्हारा ख़त पहुंचा दिया और अब तक तो वो पढ़ भी चुके होंगे. और हां, किसी को भी कोई शक़ सुबहा नहीं हुआ, अब तू चलने की तैयारी कर, सामान बांध, अब अमावस में दिन ही कितने बचे हैं?''

अमावस का नाम सुन कर भूरिये का दिल बैठा जाता था. उसे बहुत घबराहट होती, रात को नींद उड़ जाती. घंटों यही सोचता रहता—ना जाने मां-बापू क्या जवाब देंगे? उन्होंने इस नादान भूरिये की नादानी को माफ़ किया भी है या नहीं? यही सोचते आख़िर अमावस भी आ गयी. शाम की सात बजे ट्रक रवाना हुआ. ट्रक रात के ग्यारह बजे तक सुंदनपुर से गुज़रेगा. भूरिये के भीतर खलबली मची हुई थी, वह बहुत बेचैन था, जाने आज क्या फ़ैसला होने वाला था, क्या उसकी नादानी उसे इतनी भारी पड़ेगी. उसने घर छोड़ने से पहले यह जरा भी नहीं सोचा था. मां-बापू का उसके अलावा कौन था इस दुनिया में? उसने यह पहले क्यों नहीं सोचा? उसे ख़ुद पर गुस्सा आने लगा. कितना प्रेम करते थे मां-बापू उससे, और प्रेम करने वाले बापू ने अगर जरा-सा डांट भी दिया तो क्या उसे यूं घर छोड़ देना चाहिए? नहीं भूरिया, तूने ये जरा भी अच्छा नहीं किया मां-बापू के साथ. उसकी अंतर्आत्मा उसे धिक्कार उठी. इसी बेचैनी, उहापोह के साथ रास्ता कट रहा था. भूरिये के चेहरे के नित नये बनते-बिगड़ते भाव सरदार सिंह की अनुभवी आंखों से छिपे हुए नहीं थे, फिर भी सरदार सिंह इधर-उधर की बातें कर के भूरिये का मन बहलाने का हर संभव प्रयास कर रहा था. सुंदनपुर गांव की सीमा शुरू हो गयी थी. भूरिये की मनःस्थिति पहले से और अधिक ख़राब होने लगी थी. उसने मुंह दूसरी तरफ़ फेर लिया. न जाने आज क्या होने वाला है? भूरिया अपना दिल थामे बैठा था. तभी सरदार सिंह ख़ुशी से उछला, ओये पुत्तर, उतर, तेरा घर आ गया. सरदार सिंह की आंखों से किसी झरने की तरह झर-झर आंसू बह रहे थे. सहसा उसने मुंह अपने घर की तरफ़ किया, उसकी आंखें खुली की खुली रह गयीं. भूरिये के घर की ऐसी कोई जगह बाक़ी नहीं रही थी जहां दिया नहीं जल रहा हो. लगभग सौ से भी अधिक दिये जल रहे थे, अमावस की काली रात में भूरिये का घर रोशनी से जगमगा रहा था. छत की मुंडेर, घर के बाहर चबूतरे पर, भीतर आंगन में हर जगह दिये जल रहे थे. लग रहा था जैसे भूरिये

लघुकथा

सुरक्षित स्थान

✍ नरेंद्र कौर छाबड़ा

चार घरों के कपड़े बर्तन धोने के पश्चात विभा घर लौट रही थी. अप्रैल का महीना और चिलचिलाती धूप. गर्मी, पसीने से बेहाल उसने साड़ी के पल्लू को सिर पर लपेट लिया और तेज़ क़दमों से चलने लगी. तभी उसे महसूस हुआ कोई उसका पीछा कर रहा है. पीछे मुड़कर देखा दो मनचले भद्दी बातें करते हुए उसके पीछे चले आ रहे थे. वह हलके से कांप गयी सड़कें सुनसान थीं और उसका घर दूर था. उसने अपनी चाल की गति बढ़ा दी. कुछ पलों के बाद उसने पीछे मुड़कर देखा वे मनचले भी तेज़ गति से उसके पीछे चले आ रहे थे. अब वह भयभीत हो उठी क्या करे आसपास कोई नज़र नहीं आ रहा था.

बदहवास-सी दौड़ती हुई चौराहे से वह जिधर क़दम पड़े, उधर ही मुड़ गयी. कुछ आगे जाकर बड़ा-सा गेट दिखा और वह भीतर चली गयी. सामने का दृश्य देखते ही उसकी भय से हल्की-सी चीख़ निकल गयी. यह श्मशान भूमि थी और सामने चिता जल रही थी. लगता था अभी-अभी परिवार वाले दाह संस्कार करके लौटे हैं. तभी उसने पीछे मुड़कर देखा वे मनचले बाहर ही ठहर गये थे. उसकी सांस धौंकनी-सी चल रही थी. कुछ क्षणों के पश्चात कुछ सोचकर वह वहीं पर बैठ गयी. घबराहट से उसका हलक सूख रहा था.

चंद मिनटों के पश्चात उसकी नज़र गेट पर पड़ी, मनचले वहां नहीं थे शायद भीतर आने की उनकी हिम्मत नहीं हुई. उसने हल्की-सी राहत की सांस ली फिर वह सोचने लगी शायद दुनिया में एकमात्र यही एक ऐसा स्थान है जहां नारी की इज़्ज़त लूटने की हिम्मत कोई नहीं कर सकता.

✉ ए-२०१, सिग्नेचर अपार्टमेंटस् , तंदूर होटल के पीछे, बंसीलालनगर,
औरंगाबाद-४३१००५ (महाराष्ट्र). मो. ९३२५२६१०७९
E-mail : Narender.chhabda@Gmail.com

के घर दीपावली आज ही आयी हो. घर के अहाते में भूरिये के मां-बापू हाथ में जलते दिये लेकर खड़े थे. यह नज़ारा देख सरदार सिंह और भूरिये दोनों की आंखों से बारिश होने लगी, इस बारिश में सब के दिल भी भीग रहे थे. अनुभवी सरदार सिंह की गीली-पनीली आंखें मुस्कुरा रही थीं. आख़िर उसका अनुभव कैसे हार सकता था, आख़िर एक बिछड़े परिवार का मेल हो ही गया. भूरिये के घर आज दिवाली थी जो ढेर सारी ख़ुशियां लेकर आयी थी. भूरिये के मां-बापू भावविह्वल हो उसे चूमे जा रहे थे. आख़िर उनके घर का राजकुमार बनवास काट कर आज घर लौटा था. सच में उनका चांद आज अमावस को लौट ही आया.

✉ ४४८ शास्त्री सर्किल,
उदयपुर (राज.)-३१३००१
मो. : ७८७७३५४५४७
*ई मेल:- **skys4shakku@gmail.com***

महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी
मुंबई

वर्ष २०१६-१७ के लिए अकादमी के पुरस्कार घोषित किये गये हैं. **'कथाबिंब'** के प्रधान संपादक **डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद'** को हिंदी भाषा की सेवा करने के लिए राज्य स्तरीय सम्मान, **'जीवन गौरव'** पुरस्कार मिला है.

इस पुरस्कार की राशि ५१ हज़ार रुपये है. डॉ. अरविंद को 'छत्रपति शिवाजी राष्ट्रीय एकता' पुरस्कार से अलंकृत किया जायेगा.

'कथाबिंब' परिवार

पटवारन मां

नीता श्रीवास्तव

''ग्राम, नाम का ही है. पानी की किल्लत ऐसी है, कि आज भी गांववालों को जंगल और एकमात्र 'नारायण बा की काली बावड़ी' का ही आसरा है.''

हेडमास्टर साहब की बात का आशय समझते ही माया के होश उड़ गये. वह विश्वास का मुंह ताकने लगी, लेकिन वहां असमंजस का कोई चिन्ह नहीं था. विश्वास का फ़ैसला अटल है. होना भी चाहिए... क्योंकि वह पिता है, दो बेटियों का.

बस, यही मुद्दा तो है, जो माया और विश्वास के मध्य कभी मतभेद नहीं होने देता. मुद्दा, सेतु, जीवन संग्राम या लक्ष्य कह लें, सबकी संदर्भ सहित व्याख्या एक ही होगी; उनकी बेटियां... फूल–सी कोमल, हर दिन बड़ी होती बेटियां. सारी जद्दोजहद उन्हीं से शुरू होकर उन्हीं पर ख़त्म.

''मकान की व्यवस्था हो जायेगी... दो कमरे मिल जायेंगे. पटवारन मां के मकान में, चलिए मैं भी साथ चलता हूं.'' हेडमास्टर साहब के व्यवहार में स्पष्टता के साथ सहयोगी भावना साफ़ झलक रही थी.

वे तीनों ज्योंही स्कूल से बाहर निकले गली के स्त्री-पुरुष मुड़ कर देख लेते. माया मन मारे, चुपचाप चल रही थी पर अब तक उनके पीछे आठ–दस बच्चों की टोली लग चुकी थी.

— स्कूल की नयी टीचर जी कौतुक, भय, विस्मय से पीछे भागते बच्चे. दृष्टियां... हर उम्र की.

माया... राजधानियों में पली-पढ़ी, मायका जयपुर और ससुराल भोपाल. पत्र-पत्रिकाओं में ग्रामीण जीवन के बारे में पढ़ा तो बहुत, मगर रू-ब-रू होने का पहला मौक़ा है यह. पहला, वह भी सिर्फ़ देखने भर का नहीं बल्कि उसे इस छोटे से गांव में जीवन के नये अध्याय को प्राणपण से शुरू करना है. नयी परीक्षा देनी है उसे, देखो... रिज़ल्ट क्या निकलता है?

''अभी तक तो कभी फ़ेल नहीं हुई हूं.'' मन में माया ने स्वयं की पीठ ठोंकी, तो नयी जान आ गयी. संग-संग दौड़ते मैले-कुचैले बच्चों को देख वह मुस्करा दी, जो बच्चों के लिए हौसला अफ़जाई साबित हुई; टोली में कुछ और बच्चे जुड़ गये.

''ये आ गया पटवारन मां का घर...'' कहते हुए हेडमास्टर साहब माया की ओर देखते हुए बोले — ''क्या है कि पटवारी जी की वाइफ़ को पूरा गांव 'पटवारन मां' कहकर ही पुकारता है.''

'पटवारन मां' मन में दोहराते ही माया की आंखों में छवि अंकित हो गयी, कि संबोधन के अनुरूप ऊंची-पूरी, भारी-भरकम, घेरदार अस्तर वाला छींटदार घाघरा, टुक्की वाली चोली के ऊपर वॉयल का लुगड़ा ओढ़े; अधेड़ महिला होंगी पर यह तो एक कमनीय युवती निकली. उसी की हम उम्र, किंतु उससे लाख गुना सुंदर. माया ने मन ही मन नामकरण कर डाला — 'पद्मावती.'

पर कहां? युवती को अपने रूप सौंदर्य पर रत्ती भर भी गुरूर नहीं था. गेट खड़कते ही माथे के बोर पर पल्ला जमाते बाहर आ गयी.

''आज माट्साब पटवारन मां के द्वारे... कोई ख़ास बात...''

और बात बन गयी. हेडमास्टर साहेब की अच्छी साख है गांव में, कोई मोलभाव नहीं, जांच-पड़ताल की ज़रूरत नहीं, बाल-बच्चेदार टीचर जी, पति के संग कमरे देखने आयी तो बात तय होने में देर न लगी और सबसे बड़ी बात यह कि पटवारन मां ख़ुद मुख़्तयार थीं, पटवारी

जी से परामर्श या परमिशन की उन्हें दरकार ही नहीं थीं.

कमरे दिखाते हुए पटवारन मां बोली — ''टीचर जी... गांव-खेड़ा देख कर हिम्मत मत हारना... ये देहरी पटवारन मां की है, बेफ़िक्र रहो. पढ़ाना तो बड़े पुण्य का काम है.''

''पुण्य...'' सुन कर माया मन ही मन सकुचा गयी. इतनी ऊंची सोच का परिणाम नहीं है, उसका शिक्षिका बनना. यह नौकरी पाने के पीछे भी उसकी बेटियां ही हैं, इस वेतन के सहारे उसकी बेटियां मनचाही शिक्षा प्रात कर लेंगी. उन्हीं के भविष्य को संवारने की फ़िक्र में आज वह गोबर-मिट्टी से लिपे कमरे में खड़ी है. कहने को यह विश्वास का फ़ैसला है, लेकिन उन दिनों उसके अंतर्मन में भी यही ख़्याल आता था. वह तो संकोचवश चुप रही मगर माया के मन की बात विश्वास ने ही व्यक्त कर दी.

''माया... तुम बी. एड. कर लो.''

''क्या..? और... क्यों कर लूं बी. एड.?''

उसके प्रश्न को सुन, बड़ी देर बाद चुप्पी तोड़ते हुए जब विश्वास ने अपना मंतव्य स्पष्ट किया, तो माया ने मनचाही मुराद पा ली.

''स्वावलंबन... माया मुझे लगता है तुम्हें भी स्वावलंबी होना चाहिए.'' सुनते ही माया की आंखें बरस पड़ीं.

सच है... सिद्ध कहावत है कि मुसीबत कभी कहकर नहीं आती. उन पर भी तो आफत का परनाला ऐसा टूटा, कि सुनने वाले को यक़ीन नहीं होता कि दुर्घटना इस तरह भी हो सकती हैं.

विश्वास का तो बरसों पुराना है, चक्की चौराहा. एक-एक पत्थर-कंकड़ से वाकिफ़... उसकी ओर से तो कोई चूक ही नहीं हुई थी, रोज़ की तरह गली में ज्योंही मुड़ा, त्योंही हांफते-दौड़ते सांड के पीछे झपटता-भागता डाबरमैन कुत्ता; संभलने का मौक़ा दिये बग़ैर ही बाइक के अगले पहिए से यूं टकराया कि विश्वास गुलटियां खाता दूर जा पड़ा था.

फिर अस्पताल, ऑपरेशन, प्लास्टर सारे कर्म हो गये. सिर में गंभीर चोट के अलावा दाहिने टखने और दाहिनी कोहनी में रॉड डाली गयी. बहुत कठिनाई से वे माह गुज़रे. उस एक्सीडेंट ने विश्वास को सतर्क कर दिया.

''अगर उसे कुछ हो जाता तो...? दो-दो बेटियों को माया किसके आसरे पालती?'' पलंग पर पड़े-पड़े विश्वास हर दिन बेटियों के भविष्य को सुरक्षित करने के उपाय सोचता रहा, हर क्षण माया उसके साथ रही, वह बुरा वक़्त दोनों को, एक-दूसरे का महत्त्व समझा गया. दोनों को विचार करने का समय भी मिला और समझ भी, कि आमदनी के एक से ज़्यादा स्रोत हों अथवा पति-पत्नी दोनों कमायें, ताकि वक़्त पड़ने पर किसी तीसरे का मुंह न ताकना पड़े, हाथ न फैलाना पड़े.

विश्वास आई. टी. कंपनी में इंज़ीनियर है, सैलरी भी अच्छी है, पर है तो प्राइवेट कंपनी ही. हमेशा खटका लगा रहता है, कब घर बैठा दें; एक नहीं हज़ार बहाने होते हैं प्राइवेट वालों के, इसीलिए रोज़गार की श्योरिटी के लिए; सामाजिक सुरक्षा के लिए, परिवार के एक सदस्य को शासकीय सेवा में होना ही चाहिए. यह मत माया का ही था.

सिर्फ़ इसीलिए उसने बी. एड. की डिग्री फ़र्स्ट डिवीज़न

१४ मार्च १९५५, कसरावद (प. निमाड़).
एम. ए. (समाजशास्त्र), पत्रकारिता प्रशिक्षण.

ः प्रकाशन ः

प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में नियमित प्रकाशन के साथ विभिन्न भाषाओं में अनुवाद; 'प्रिय पाठक' साप्ताहिक में तीन वर्षों से स्तंभ लेखन ज़ारी है. आकाशवाणी के विभिन्न केंद्रों से रचनाओं का प्रसारण. कथासंग्रह- जो सच है, पानी-पानी, अमृत दा ढाबा, जन्नत दिखाता है (प्रेस में)

ः पुरस्कार एवं सम्मान ः

म. प्र. साहित्य अकादमी द्वारा सुभद्रा कुमारी चौहान पुरस्कार, अंबिका प्रसाद दिव्य स्मृति पुरस्कार; कमलेश्वर स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार; साहित्य समर्था (कहानी) प्रतियोगिता पुरस्कार (२०१६); म. प्र. लेखक संघ द्वारा कमला चौबे स्मृति पुरस्कार; उत्कृष्ट लेखन सम्मान, लेखिका संघ; नेहरू युवा मोर्चा द्वारा अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस पर उत्कृष्ट साहित्य सेवा सम्मान-केंद्र द्वारा (२०१२); हरियाणा, उत्तर प्रदेश आदि की विभिन्न पत्रिकाओं एवं अनेकों संस्थाओं द्वारा सम्मानित एवं पुरस्कृत.

में प्राप्त कर लेने के बावजूद भी, भोपाल के तमाम इंग्लिश मीडियम पब्लिक स्कूलों में आवेदन करने के बजाय; सरकारी स्कूल की शिक्षिका होने के लिए प्रयास शुरू करने को प्राथमिकता दी.

माया की इच्छाशक्ति थी या वास्तविक योग्यता, कि पहले उसका चुनाव संविदा शिक्षक के लिए हुआ और उसके एक वर्ष बाद ही उसने व्यापम-भोपाल की परीक्षा पास कर ली. स्थायी नियुक्ति में शाला केंद्रों के चुनाव का कोई ऑप्शन नहीं होने के साथ सभी शिक्षकों को तीन वर्ष ग्रामीण पाठशाला में पढ़ाना अनिवार्य ही था.

नेट पर लिस्ट देखते हुए जी धक-धक हो रहा था. लिस्ट खुली और उसके नाम के आगे नियुक्ति स्थान लिखा था — ''शासकीय प्राथमिक शाला, ग्राम : इमलिया.''

सिर पकड़ लेने के बावजूद भी माया के पेट में प्रसन्नता के भंवर घूमने लगे. आयु सीमा की कगार पर पहुंचने से पूर्व ईश्वर कृपा से मिल ही गयी सरकारी नौकरी.

इमलिया... होशंगाबाद, बुधनी के तिराहे से बस कच्ची-पक्की सड़क पर जो उतरी, तो उतरी ही उतरी. इंटीरियर में कई किलोमीटर घना जंगल... वह भी काली चट्टानों के मध्य, भूमि पर सागौन, तेंदू, खांखरे आदि तमाम इमारती, ग़ैर इमारती वृक्षों की घनियारी छाया के तले बंदरों के झुंड... पक्षी... चरते पशुओं की सजीव कतारें देखते हुए, माया की नज़रें सिर्फ़ बस्तियां तलाश रही थीं; अंतत: बस रुकी और उतरते ढलान पर होती पगडंडी पर, नज़र दौड़ाते ही दूर पेड़ों के झुरमुट में नज़र आ ही गया, माया का नया मुकाम — इमलिया.

और ये दो कमरे — माया का नया घर... वाक़ई किराए के कमरों को घर बनते देर न लगी. मकान-मालकिन होकर भी पटवारन मां ने संरक्षक भाव ही प्रकट किया. एक वाक्य तो वे नियम से पूछतीं— ''टीचर जी... सब बढ़िया चल रहा है न?''

एक, जंगल जाने की समस्या पर ही उनका वश नहीं था बाक़ी उन्होंने पहले दिन से ही माया के लिए पानी की समस्या का निराकरण कर दिया था. जो बरौआ, पटवारन मां के यहां पानी भरता था. वही व्यक्ति माया के घर का पानी भी भरने लगा; दो डिब्बों वाली कावड़... जितनी कावड़ उतने पैसे.

मेहनत का काम है पानी लाना. ले-देकर सिर्फ़ एक ही बावड़ी है गांववालों के पास, कहते हैं वह भी पूर्वजों का पुण्य कर्म ही समझो; नहीं तो गांव में तो पानी है ही नहीं. ये एकमात्र बावड़ी भी गांव से फ़र्लांग भर दूर, बीच खेत में बनी है. पटवारन मां ही, दयाराम बा के दानधर्म के क़िस्से सुनाती हैं, कि लोग कहते हैं; सौ साल पुरानी बावडी है, खेतीबाड़ी की सिंचाई के सिवा अक्खा गांव दिन रात भी उलीचता रहे पानी; पर एक बिलास पानी नहीं उतरता, लेवल. उत्ता का उत्ता; ऐसी मोटी-मोटी आव हैं बावड़ी में.

बिना पानी के कौन-सा काम होता है? औरतें अधमरी हो जाती हैं पानी ढोते-ढोते. असल में गांव में पानी है ही नहीं, पूरी धरती को छेद चुके हैं गांववाले. पंद्रह फ़ीट कच्ची खुदाई तो, बहुत गहरी हो गयी, कहीं-कहीं तो दस फ़ुट पर ही 'काली चाट' आ जाती है. लोहे को मात देती चट्टानें... पुराने ज़माने में तो 'घन-हथौड़े-छैनी' से खुदाई होती थी पर अब तो बोरवेल मशीन से सौ-सौ फुट होल कराने पर भी, पानी दूर कीचड़ तक न निकला; हार गये हिम्मत किसान. ज़मीन-ज़ायदाद छोड़ के गांव से जायें कहां और पानी ही नहीं है तो गांव बढ़े कैसे? जहां का तहां ठहर गया है गांव.

स्कूल भी प्राथमिक शाला केंद्र से आगे न बढ़ सका. वही बरसों पुरानी क्वार्टरनुमा शाला... एक बरामदा और चार कमरे, हेडमास्टर साहब ही तीसरी से पांचवी कक्षा तक के बच्चों को पढ़ाते हैं, परिक्षाएं निर्धारित करते हैं बाक़ी बच्चे माया के ज़िम्मे; हर साल चार-छ: बच्चों को छठी पढ़ने, पास के गांव की माध्यमिक शाला में जाना ही पड़ता है. लड़कियां प्राय: पांचवीं करने के बाद घर के लिए पानी लाने का काम या छोटे भाई बहनों को संभालने लगती हैं.

स्कूल की दीवार से लगा बजरंग बली का मंदिर है. बजरंग बली का मंदिर होने के कारण स्त्रियों का प्रवेश, पूजा निषिद्ध है. युवकों और वृद्धजन का ही आना–जाना बना रहता है.

शुरू में माया का ध्यान नहीं गया, पर फिर रोज़ का ही क्रम हो गया. दो चार हनुमान भक्त ब्रह्मचारी, चना-चिरौंजी का प्रसाद लेकर शाला के अंदर आने लगे. पहले सिर्फ़ हेडमास्टर साहब को देकर चले जाते थे, फिर सब बच्चों को भी बांटने लगे, अब दो चार दिनों से तो माया की अंजुली में भी मुट्ठी भर प्रसाद देने लगे हैं. अब तो कभी-कभी पुजारी जी भी राम-जुहार करने आ जाते हैं. माया का मन होता... इन भक्तजनों से साफ़ कह दे कि बच्चों को

डिस्टर्ब न करें, किंतु हेडमास्टर साहब भीगी बिल्ली बने रहते, तो वह क्या बोलती?

लेकिन बातों ही बातों में पटवारन मां से ज़िक्र कर बैठी. रोज़ ही स्कूल से लौटती है, तो पांच-दस मिनट उनसे गपशप करने के बाद ही अपने द्वार का ताला खोलती है.

'परशाद कांड' सुनते ही पटवारन मां ने मुंडी हिलाते गंभीरता से माया के कंधे पर हाथ रख दिया — "टीचर जी... बहोत अच्छा किया, ये बात बताकर... कोई भी बात कभी मुघ्घम् में नहीं रखना चाहिए; और औरतों को तो आपस में कोई बात छुपाना ही नहीं चाहिए. चलो... पटवारन मां के कान में बात डाल दी, अब बेफ़िक्र हो जाओ."

उसने कंधे पर धरी पटवारन मां की हथेली को पकड़ उनके वक्ष पर सिर, कुछ इस भाव से टिकाया मानो निश्चिंत हो गयी हो. दोनों ही अपनापे में ऐसे जुड़ बैठीं कि एक-दूसरे का नाम जानने का ख़्याल ही नहीं आया. दोनों का ओहदा ही उनका नाम बन गया, व्यक्तित्व की छाप दोनों के मुख पर स्पष्ट झलकती भी है.

फिर भी माया को पटवारन मां अपने से ज़्यादा मुखर, प्रभावी और निर्भीक लगती हैं. माया को लगता है जिसे वह अपनी शिक्षा से जोड़ कर लिहाज़, मुलाहिजा या नम्रता का नाम दे देती है, वह असल में उसकी दब्बूपन, भय या असुरक्षा की भावना है.

दरअसल महानगरीय संस्कृति में पली-बढ़ी माया ने उस एकल समाज में, एकजुटता न देखी, न जानी. भोपाल हो या जयपुर... दोनों ही शहरों के गर्ल्स स्कूल हों या गर्ल्स कॉलेज़... लगता था, वहां हर लड़की अकेली होती है... हर अभिभावक अकेला पड़ जाता था; ख़ासतौर पर तब; जब सार्वजनिक समस्या नहीं होती थी, सांझा अड़चन नहीं होती थी. अपनी समस्या आप निपटो... वाली टेंडेंसी.

तभी तो नगरों में मजनुओं का आतंक रुक ही नहीं पाता है भले ही प्रशासन स्कूल-कॉलेज़ के आसपास पुलिस बल तैनात करें या फिर संस्थान ही गेट पर गार्ड्स नियुक्त करे.

आये दिन छेड़खानी की घटनाएं हो जातीं. आवारा-निकम्मे युवक ना जाने कब मौक़ा ताक कर कभी फिकरे-जुमले कसते तो कभी छूते हुए गुज़र जाते. घंटों ढाबों-नुक्कड़ों पर सीटियां बजाते... धुआं उड़ाते जमे रहते और कोई बल, कोई शक्ति, कोई धारा उनका कुछ नहीं बिगाड़ पाती.

बेवकूफ़ लड़कियां अकेले कांपने-लरज़ने की बजाये झुंड बनाने, समूह बनाने की, एक-दूसरे की मदद करने की ठान लें तो मजनूं सिर पर पैर रख कर भागें... टूट पड़ें एक पर तीन-तीन, तो उड़न छू हो जाये आशिकी, लेकिन तीन स्त्रियां, एक हों तब न?

माया ने कभी जिन बातों पर ग़ौर ही नहीं किया, वे तथ्य, वे विचार उसे पटवारन मां के सान्निध्य में मिल रहे थे. वास्तव में स्थान, सुविधा या संपत्ति से नहीं बल्कि सोच, संस्कार और सहयोग से सुरक्षा भावना आती है. माया को भी कुछ महीनों में गांव, अपना–सा लगने लगा और गांव वाले अपने. हर शनिवार की शाम तक वह भोपाल पहुंच जाती तो घर में उत्सव–सा रंग भर जाता. विश्वास, विभा और सिया, तीनों अपनी-अपनी बात कहने को बेताब और माया के पल-पल की जानने को उत्सुक.

और रविवार की शाम से ही घर में चुप्पी-सी पसर जाती थी, पर अब की बार माया बैग जमा ही रही थी कि उसके द्वार पर दस्तक हुई.

ऐसा तो कभी नहीं हुआ. ये पटवारन मां का घर है... उन्होंने अब तक कभी बिना पुकारे दरवाज़ा नहीं खटखटाया... क़ायदा है पटवारन मां के घर का... गेट से पुकारने के बाद दालान में दाख़िल होने का, पुनः दस्तक हुई... माया, कौन है? पूछती, उससे पहले ही पटवारन मां की खिलखिलाहट सुन माया ने सांकल खोल दी. सरप्राइज़...!

— "ओह...मां" कहती दोनों बेटियां उससे लिपट गयीं. देखा... पटवारी जी और विश्वास दालान में खड़े बतिया रहे हैं. माया के कमरे में पहली बार दुनिया भर की खुशियां भर गयीं.

"विश्वास और बेटियों को उसकी फ़िक्र है." इस सुखद अनुभूति से माया की आंखें बरसने लगीं, आंसू पोंछते सिया बोली — "मां... आप तो कहते हो... यहां पानी की बड़ी कमी है, फिर इतनाऽऽ पानी कहां से आया?" सिया की बात सुन माया मुस्करा दी. माया की मुस्कान देखते ही पटवारन मां उठ खड़ी हुई — "टीचर जी... अब तो पूरा भोपाल चल कर, यहीं आ गया है, तो इस 'सन डे' इमलिया में ही पिकनिक हो जाये; कल चलते हैं, काली बावड़ी पर पिकनिक मनाने; वहीं बाग में दाल बाटी बनवायी जाये... इसी बहाने आप सब देख भी आयेंगे बावड़ी."

दाल-बाटी... विभा और सिया की मनपसंद डिश, दोनों लूम गयीं पटवारन मां के गले में; पहली बार मिलने

के बावजूद भी अपरिचय का बोध कहीं नहीं था, क्योंकि माया थी तो उनकी मध्य संबंध सेतु. मोबाइल पर मिनट-मिनट की ख़बर रहती है इन्हें.

घर से निकलते-निकलते दस बज गये थे. न सिर्फ़ पिकनिक का आइडिया बल्कि सारा अरैंजमेंट भी पटवारन मां के हाथ में था. पटवारी जी ने दो हेल्पर बुला लिये थे... भोजन व्यवस्था के लिए.

माया महीनों बीत जाने के बाद भी गांव के बाहर बनी काली बावड़ी के नाम से ही परिचित थी. देखी नहीं थी अब तक.

जैसे ही गांव के बाहर टीले से उतरे, मंत्रमुग्ध–सी देखती ही रह गयी. ऐसे मनोरम प्राकृतिक दृश्य, साफ़ शीतल मंद पवन और पेड़ ही पेड़. ज्यों-ज्यों खेत-मेड़, पार करते बावड़ी के क़रीब पहुंच रहे थे... पेड़-वृक्षों की संख्या बढ़ती जा रही थी और बावड़ी तो पूरी की पूरी पेड़ों के झुरमुट में ही, शीतल छाया में स्थित है.

इमली, आम, पीपल, बिल्व, नीम, आदि के साथ-साथ खजूर के कतार के कतार पेड़. खांकरे और झरबेरी की तमाम झाड़ियां, नये-पुराने वृक्षों से हटकर विशाल वट वृक्ष.

— ''ऐसा लग रहा है स्वर्ग में आ गयी हूं...'' माया ने ऐसी शीतल छाया जीवन में पहली बार अनुभूत की थी, सुनकर पटवारन मां बोल पड़ी — ''तभी तो यहां जलस्रोत है... पूरा गांव इसी बावड़ी के आसरे... जल देवता विराजे हैं यहां, तो स्वर्ग ही है.''

पटवारन मां मेजबान बनी खिली जा रही थीं. दाल-बाटी बनाने का उपक्रम चल रहा था. उपलों को सुलगा कर अंगार बनने की प्रतीक्षा करतीं, पटवारन मां बीच-बीच में बावड़ी पर पानी भरने आने वाली बहू-बेटियों से भी हालचाल ले रही थीं. एक जगह तो वे बैठ ही नहीं रही थीं, फिरकी से घूम रही थीं.

झुंड की झुंड औरतें, सिर पर बड़ी-छोटी दो-दो गागर-हंडे साधे... किसी-किसी के हाथ में तो एक बाल्टी भी, एक रॉउन्ड में जितना ज़्यादा पानी भर ले जायें, उतना अच्छा. आना-जाना लगा था.

दूरी-बोझ और तीसरे सौ बरस से ज़्यादा पुरानी बावड़ी. विशाल चौकोर बावड़ी... पूरी की पूरी काले पत्थर से बांधी हुई... ऐरन (लोहे से भी पक्का पत्थर... एकदम काला खुरदुरा, शायद आयरन का अपभ्रंश शब्द है ऐरन) की ही दीवारें, बड़ी-बड़ी सीढ़ियां और चौकोर चौड़ी मुंडेर भी. बावड़ी कितनी गहरी है, उसमें कितनी मोटी-मोटी आव है... इसकी कई प्रचलित दंतकथाएं हैं लेकिन वर्षों से पटवारन मां की आंखों देखी बात है कि कितनी भी गर्मी पड़ जाये... सूखा पड़ जाये और कितना भी पानी उलीच लें... पानी नौ सीढ़ी से नीचे कभी नहीं उतरा.

माया का भी मन हुआ, वह भी बावड़ी की सीढ़ियां उतरे और एक लोटा जल भर कर देखे. वह उठती, इसके पहले ही पटवारन मां बोली — ''आओ टीचर जी... तुम्हारी जान-पहचान कराऊं, गांव की छोरियों से...''

उन दोनों को अपनी ओर आते देख छांह में बैठी औरतों में खुसुर-फुसुर होने लगी, और तो और... पल भर पहले की हंसी ठिठोली भी गुम गयी. सबने मुख पर लंबे-लंबे घूंघट खींच लिये तो माया को अजीब लगा. हद है... मुझसे पर्दा? लेकिन पटवारन मां ने तुरंत ऑब्ज़ेक्शन लिया — ''क्यों री... तुमने लुगाइयों को देख कर छेड़ां काढ़ना कब से चालू कर दिया?''

— ''नी पटवारन मां... तुम तो कभी आओ नी बावड़ी तरफ़... तो क्या जानो? वो देखो... चला आ रहा है... रोज़ आता है... वो पंडितवा...''

सुनते ही पटवारन मां ने घूम कर देखा... तेज़ चाल से बावड़ी की ओर आते पुजारी जी को देख गंभीरता से मुंडी हिलायी और पुन: बाटी सेंकते युवकों की बग़ल में बैठ ख़ुद भी बाटियां उलटने-पलटने लगीं.

पुजारी को आते देख माया को भी करंट सा लगा. ये आदमी उसे फूटी आंखों नहीं सुहाता है. रोज़ ही तो स्कूल आते-जाते टकरा जाता है. स्कूल और बजरंग मंदिर के बीच एक दीवार ही है, पूजन-भजन तो ठीक, पर मंदिर आने जाने वाले लोगों तक से 'जय श्री राम' भी इतने ज़ोर से बोलता है; लगता है सामने वाले के सिर पर नारियल ही फोड़ दिया हो. स्त्रियों को घूरेगा वह भी मुस्कुराते हुए... छि: पुजारी को आते देख वह पटवारन मां के पास बैठ बाटियां सिंकवाने लगी. पटवारी जी तो विश्वास और सब बच्चों को लेकर बग़ीचा घुमाने निकल गये थे, माया चाह रही थी ये लोग जल्दी से आ जायें... वे तो नहीं पर पुजारी जी आ चुके थे. कुछ देर तो इधर-उधर टहलते रहे फिर उन लोगों के पास आ खड़े हुए, तो पटवारन मां ने दोनों हाथ जोड़ बड़ी इज़्ज़त से 'पाय लागूं पंडतजी' कहा और फिर बाटी

पलटने लगीं.

माया ने तो सिर उठा कर भी नहीं देखा. पुजारी जी बावड़ी की ओर गये और मुंडेर पर, जहां पीपल की छाया घनेरी थी; जा बैठे और इधर-उधर निःस्पृह भाव से देखते रहे. कुछ देर बाद पहलू बदल मुंडेर से उतरे और मुंडेर पकड़ बावड़ी में झांकने लगे.

दस मिनट, बीस मिनट हो गये मगर पुजारी जी टस से मस नहीं... एक ही मुद्रा में धरती पर बोझ धरे, जो पांव जमा के खड़े हुए कि हुए ही हुए. माया चुपचाप तमाशा देख रही थी कि पटवारन मां राख भरे हाथ झटक, पल्ले से पोंछती उठीं और माया को बुलाते हुए बावड़ी की ओर चल दीं.

पटवारन मां को आती देख, वही युवतियां उनकी ओर बढ़ीं मगर पटवारन मां चलते हुए एकदम पुजारी जी की बराबरी पर जा खड़ी हुई और हू-ब-हू उन्हीं की मुद्रा में बावड़ी में झांकने लगीं, फिर पुजारी जी की ओर देख ऊंची आवाज़ में पूछा — ''पंडत जी... देख रही हूं, घंटा भर से ढूंढ़ रहे हो बावड़ी में. कहीं पानी के अंदर गड़ा खजाना-वजाना तो नहीं दिख रहा है...''

कहते हुए आजू-बाजू खड़ी स्त्रियों को देख आंखें चौड़ी करके बोलीं — ''हां भई... भरोसा क्या इन पंडतों का... आजकल तो एक से एक बाबा सुनायी दे रहे हैं... इस पंडत को भी आती हो कोई विद्या-सिद्धि, तंत्र-मंत्र. बजरंग बली के भक्त जो ठहरे, बिचारे.''

पटवारन मां का मुख तमतमा रहा था. पटवारन मां का यह रूप देखते ही माया के दिमाग़ की बत्ती जल गयी. इनसे ज़िक्र करने के चार दिन बाद से ही वे सारे 'परशादिए' ऐसे लोप हुए कि कभी स्कूल के अहाते में भी नज़र नहीं आये और आज उन सबके गुरूजी भी, पटवारन मां के हत्थे चढ़ ही गये.

पुजारी को पटवारन मां आड़े हाथों ले रही थीं. सफ़ाई का मौक़ा दिये बग़ैर शेरनी सी दहाड़ रही थीं — ''का हो पंडत... तोम्हें लाज नहीं आती. देख रहे हो... बहू-बेटियां हंडा धरे सिर पर, जैसे-तैसे गीली सीढ़ियां चढ़-उतर रही हैं... ऊपर से माथे पर तुम सवार... घूंघट छेड़ां नहीं लेंगी तो गांव भर में गाते फिरोगे, कि फलाने-फलाने की बहू खुल्ली घूमती रहती है. सीढ़ियों का उतरना-चढ़ना है... तुमसे घूंघट करें कि छोरियां पानी भरें? पांव फिसल जाये... ठोकर लग जाये तो...? तो पंडत... बचा लोगे पानी में कूद कर कि यूं ही टुकुर-टुकुर ताकते रहोगे..? ऐंऽऽ?'' पटवारन मां ने भवें उचकाते हुए पूछा.

पुजारी जी को, ऐसी स्थिति बन सकती है, उम्मीद ही नहीं थी. एकदम अचकचा गये — ''अरे... राम-राम-राम-राम. मैं हाथ जोडूं तुम्हारे... मेरी मां. मैं ठहरा बुड्ढा आदमी... आंखों से लाचार... दिखता ही कहां है... जो ताकूंगा-निहारुंगा?''

पुजारी जी की सफ़ाई सुनते ही पटवारन मां और भभक उठीं — ''बस पंडत... अब कहने-सुनने को कुछ रहा ही नहीं. ये जो अपनी आंखों की लाचारी-कमज़ोरी बता रहे हो न... इनकी दवा-दारू कराओ और बावड़ी तरफ़ का तो रास्ता भी भूल जाओ वरना अगर अब बावड़ी के आसपास भी नज़र आये, तो हम तुम्हारे बजरंग बली के भी भगवान सिरी रामचंदर जी की सोगन खाकर कहते हैं... कि तुम्हारी कमज़ोर आंखों का ऐसा इलाज़ करेंगे कि कम-ज़्यादा दिखने का झंझट ही नहीं रहेगा.. ये दोनों आंखें हैं न... निकाल कर हाथ में दे देंगे... किस्सा ही ख़तम!''

२९४, देवपुरी कॉलोनी
महू (म. प्र.)-४५३४४१
मो. : ९८९३४०९९१४

ग़ज़ल

राकेश भ्रमर

पत्थर की दीवारों के घर बना रहे हैं लोग,
सबसे जुदा अनोखी दुनिया बसा रहे हैं लोग.

सूरज चाहे कहीं न निकले, चांद न घर में आये,
हवा न पानी, ऐसी दुनिया बसा रहे हैं लोग.

खिड़की रोशनदान नहीं हैं, आंगन-सहन नदारद,
दम घुटता है जहां, उसे घर बता रहे हैं लोग.

गलियां बंद पड़ी हैं, कूचों में भी चलना दूभर,
गूंगे हैं, पर कुछ तो शायद बता रहे हैं लोग.

नीचे ज़मीं नहीं है, ऊपर आसमान भी ग़ायब,
जाने कैसे इसको जन्नत बता रहे हैं लोग.

मूरत रोज़ पूजते हैं पर घर में सबसे अनबन,
पत्थरदिल वालों की दुनिया बसा रहे हैं लोग.

७, श्री होम्स कंचन विहार,
विजय नगर, जबलपुर-४८२००२.
मो. : ९९६८०२०९३०

कटघरे में खड़ा रिश्ता

अर्चना मिश्रा

विनय को गुज़रे पूरा एक साल हो गया. इतने समय से आभा विनय की यादों के सहारे जी रही थी. बेटा-बहू हर बार साथ चलने की जिद्द करते, पर आभा का मन यादों के जाल में ऐसा उलझा था, कि कब सुबह से रात होती पता ही नहीं चलता.

इस घर को कैसे छोड़ कर जाये आभा. घर का हर कोना, हर पल उसे विनय की मौजूदगी का अहसास कराता.

विनय रिटायरमेंट के बाद हमेशा अपनी मनमानी करते. उन्हें डायबिटीज़ थी. कोलेस्ट्रॉल हमेशा बढ़ा रहता पर मीठा खाना नहीं छोड़ते. आभा कितना समझाती लेकिन उनका एक ही जवाब होता.

'देख आभा! मरना तो सभी को है, तो अच्छा-अच्छा खाकर क्यों न मरूं.'

कितना रोकती विनय को. पर उसके ऑफ़िस जाते ही वो मन मर्जी से जीते. कितनी ही बार आभा ने देखा भी कि जो सब्ज़ी वह टिफ़िन में ले गयी थी वह कम तेल और कम नमक से बनी थी, पर जो सब्ज़ी अभी शाम को घर में बची है वह ज़्यादा तेल में भुनी हुई है. पता चला विनय रोज़ ऐसा करते हैं.

आभा नौकरी ज़रूर करती थी, पर सिवाय पैसों के बाक़ी हर बात पर विनय ने उसे अपने पर इतना निर्भर बना दिया था, कि उसे कोई काम करते नहीं बनता. कभी आभा करना चाहती तो विनय का एक ही जवाब होता.

'मैं हूं ना! चिंता मत कर.'

अब जब विनय नहीं रहे आभा असहाय हो गयी. बिजली का बिल भरना, दूध के लिए डेयरी में जाकर कार्ड बनवाना, सब्ज़ी-फल, किराना लाना, घर बाहर के ना जाने कितने काम सीखने पड़ रहे हैं उसे, वह भी साठ की उम्र में.

सब रिश्तेदार समझाते. कब तक अकेले पीड़ा झेलोगी. अपनी बनायी इस दुनिया से बाहर आओ आभा. अब विनय वापिस नहीं आयेंगे.

'अपने घर का मोह छोड़ दो, बेटे के पास चली जाओ...'

यह अकेलापन तुम्हें बीमार कर देगा.

मन ज़ार-ज़ार रोता. इस उम्र में जीवनसाथी से बिछुड़ने का दुःख सबसे ज़्यादा तकलीफ़ देता है. जब सही अर्थों में किसी का साथ होना चाहिए तब... अकेलापन...?

इतने वर्षों की आदत आसानी से कहां छूटती है. मन जाने का निर्णय नहीं ले पा रहा था.

अंदर ही अंदर हमारे भीतर कितने ही रास्ते होते हैं जिन पर हम चलना नहीं चाहते. पर वक़्त के साथ रास्ते क्या उनकी खिड़कियां और दरवाज़ों को भी खोलना पड़ता है.

आख़िरकार आभा ने अपने मन को बेटे के पास जाने के लिए समझा ही लिया. हालांकि वह अच्छी तरह जानती है कि सास की गृहस्थी में बहू समा जाती है. पर बहू की गृहस्थी में सास का समाना आसान नहीं है. कुछ लोगों के अनुभव आभा सुन चुकी थी. मन मे द्वंद्व के साथ कहीं न कहीं डर व्याप्त था.

आभा ने निर्णय लिया इस बार जाकर देखती है. अगर वहां एडज़स्ट हो गयी तो यह घर किराये पर उठा देगी. उसके आने का सुन बेटा-बहू बेहद ख़ुश लगे.

ट्रेन में बैठकर आभा को आज अपनी शादी की विदाई याद आ गयी. जब वह नन्हे पेड़ की भांति थी, तभी

उसे जड़ से उखाड़ दूसरी जगह रोपा गया था. आज जब जड़ें जम चुकी हैं तब इस भरे-पूरे वृक्ष को उखाड़ कहीं और रोपना क्या संभव है? सोचकर आभा का मन क्रंदन करने लगा.

बेटे ने एक कमरा उन्हें अलग से दिया. अपनी तरफ़ से बेटे बहू ने उन्हें उस माहौल में एकसार करने की कोशिश की. आभा ने भी अपने मन को समझा लिया. सब को अपना सोचा कहां मिलता है? जो मिल रहा यह भी तो कम नहीं. समय के साथ-साथ आभा भी उनके घर में घुल-मिल गयी.

घर के कुछ काम आभा ने अपने ज़िम्मे ज़बरदस्ती ले लिये. नहीं तो दिन भर क्या करेगी.

अपने घर में सुबह जब भी नींद खुलती, आभा तुरंत चाय बना कर पी लेती थी. यहां जल्दी उठकर चाय बनाने की आवाज़ सुन पहले-पहल बहू उठ जाती थी. समझाने पर बहू ने उठना बंद किया. आभा इतने धीरे काम करती कि किसी की नींद न खुले. अपने लिए किसी को परेशान करना आभा को पसंद नहीं आता.

दिन भर कमरे में अकेले बैठे देख एक दिन बेटे ने सुझाव दिया.

मम्मी यहीं पास में पार्क है, आप सुबह सैर को चली जाया करो. आपकी सेहत भी ठीक रहेगी. बहू ने भी बेटे की बात का समर्थन किया. आभा का पार्क जाने का सिलसिला शुरू हो गया.

पार्क बहुत सुंदर था. बनाने वाले ने बीच में पानी को रोककर झील की कल्पना को अद्‌भुत तरीक़े से आकार दिया था. एक तरफ़ हरी घास का मैदान था. दूसरी तरफ़ जॉगिंग करने वालों के लिए जगह थी. चारों तरफ़ बेहद ख़ूबसूरत रंग-बिरंगे फूल और बड़े-बड़े अशोक के पेड़ थे. जिधर भी देखो वही हिस्सा बेहद ख़ूबसूरत लगता.

एक ग्रुप योगा करता. तो दूसरी तरफ़ लॉफ़्टर क्लब वाले जमा हो नकली हंसी हंसने की प्रैक्टिस करते. उन लोगों ने आभा को बैठे देख अपने ग्रुप में साधिकार ले लिया. कुछ दिन तो आभा को अजीब लगा फिर सच में हंसी आने लगी. यहां एक दो लोगों से आभा की अब बातचीत भी होने लगी.

शाम की रसोई आभा ने संभाल ली. ताकि बेटा-बहू जब बाहर जाना चाहें तो निश्चिंत होकर जायें. आभा के साथी शाम को भी पार्क में मिलते. सब्ज़ी बनाकर आभा पार्क आ जाती फिर वापिस लौटकर रोटियां बना देती.

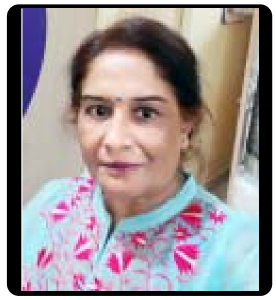

जन्म : इलाहाबाद,
विज्ञान स्नातक.
रचना विधा- कहानी और लघुकथा से शुरू होकर कविता और कहानी की समीक्षा.
: प्रकाशन :
मनोरमा, वामा, मधुरिमा और बैंक कर्मियों की पत्रिकाएं – प्रवाह और आकांक्षा एवं ई-मैगज़ीस में रचनाएं प्रकाशित. बैंक कर्मियों के साहित्यिक संगठन से अनेक बार पुरस्कृत.
: संप्रति :
बैंक में लंबे समय तक नौकरी के बाद स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति के पश्चात स्वतंत्र लेखन.

ज़िंदगी ने एक ढर्रा पकड़ लिया था. एक घेरे के अंदर गोल-गोल घूमती, साइकिल के पहियों की तरह आभा की ज़िंदगी दौड़ रही थी. देखते-देखते चार महीने निकल गये. कभी आभा को अपना घर बेहद याद आता. जो ख़ुशी वहां थी वह यहां नहीं. पर मन को सुकून था, कि बेटे के साथ है.

तभी एक दिन शाम को जब आभा पार्क की बेंच पर बैठी विनय की याद में खोयी हुई थी. तभी किसी की आवाज़ ने आभा को चौंका दिया.

'क्या मैं यहां बैठ सकता हूं?'

और बग़ैर उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये वह बैठ गये. अपने नाम और परिचय के साथ उन्होंने ऐसे बतियाना शुरू किया जैसे वह यानी 'अनंत' बरसों से आभा को जानते हों. दो बेटे हैं जो विदेश में रहते हैं. पत्नी पांच साल पहले ही गुज़र गयी थी. बड़े से बंगले में अकेले रहते हैं. जो यहां से दो किलोमीटर दूर है. ज़्यादातर वह पैदल आते हैं, कभी-कभी अपनी कार से. वर्षों पुराना नौकर सपरिवार उन्हीं के घर में रहता है.

पहले-पहल आभा को अनंत से बात करने में अजीब

लगता. फिर धीरे-धीरे दोनों में बातचीत होने लगी.

आभा और अनंत के शौक़ भी एक दूसरे से काफ़ी मिलते थे. दोनों को क़िताबें पढ़ना और पुराने गाने सुनना बेहद भाता. अनंत के घर में एक छोटी लायब्रेरी थी. वो जब-तब आभा के पढ़ने के लिए क़िताबें भी ले आते.

रोज़ सुबह गुडमार्निंग और रात को गुडनाइट के मैसेज़ का सिलसिला कब चैट में बदल गया, दोनों को पता ही नहीं चला. आप का संबोधन तुम पर आकर ठहर गया था. अब दोनों एक दूसरे को नाम से बुलाने लगे.

अनंत के पास देश-विदेश की बातों का पूरा पिटारा होता. हर गंभीर बात को छोटी-छोटी कथा के रूप में सुनाना और तनाव के माहौल से बाहर निकालकर हंसाना अनंत के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी ख़ूबी थी. आभा उनके इस गुण की बेहद कायल थी. दोनों में अच्छी दोस्ती हो गयी थी. आभा के मन की कितनी ही परतें अनंत के सामने बेझिझक खुल जातीं. विनय की कितनी बातें वह अनंत से कर लेती.

देखते ही देखते आभा को बेटे के यहां रहते पांच महीने हो गये. बहू चाहती थी कि वह शाम को पार्क जाने के बजाय हाट जाकर सब्ज़ी ले आया करे. लेकिन आभा के इंकार करने पर बहू के मुंह से बेसाख़्ता निकल गया, 'वहां तो सब काम आप ही करती थीं!'

बात चुभ गयी. पर आभा सहन कर गयी.

शाम को अक्सर पार्क में वॉक करने के बाद आभा अनंत से गप-शप करती. अनंत भी बेंच पर बैठे उसके वॉक से लौटने का इंतज़ार करते. आभा के लिए अनंत से बात करना किसी ऊर्जा के स्रोत से कम नहीं था. सच तो यह था कि इस शहर में अनंत ही उसके एकमात्र मित्र थे. जिनसे वह अपनी बात कह सकती थी.

यहां कोई पड़ोसी घर नहीं आता. कभी-कभार लिफ़्ट में मिल जाये या आमना-सामना हो तो सिर्फ़ मुस्कुराहट होंठों पर आती. 'शब्द' निकालना इतना भारी होता है, यहां आकर जाना. शायद बड़े शहर का यही कल्चर होता है.

एक दिन पार्क में बैठे हुए अनंत ने चाय पीने की इच्छा की. और चाय वाले को कहने जा रहे थे कि आभा ने उनसे अपने घर चलने का आग्रह किया.

मेरा घर पास में है अनंत, चलिए वहीं चाय पी लीजिएगा.

'कोई दिक़्क़त तो नहीं होगी तुम्हें?'

अनंत ने 'हां' कहने की जगह आभा से प्रश्न किया.

'नहीं, इसमें दिक़्क़त कैसी.' आभा का जवाब सुन अनंत चलने को राजी हुए.

आभा ने चाय बनाकर अनंत को दी. बहू से उन्हें मिलवाया भी.

'ये मेरे पार्क के मित्र अनंत हैं.'

कुछ दिनों बाद बहू की बहिन दो-तीन दिनों के लिए उनके यहां आयी. घर में काम ज़्यादा होने से आभा कई दिनों तक पार्क नहीं जा पायी. आभा ने अनंत को मैसेज़ कर दिया कि वह कुछ दिन चैट नहीं कर सकेगी. लेकिन जब भी मौक़ा मिलता मोबाइल देखती. उसे हर समय अनंत के मैसेज़ का इंतज़ार रहता.

रिश्तेदारों के जाने के बाद आभा फिर पहले की तरह पार्क जाने लगी. दोनों को लग रहा था जैसे बहुत दिनों बाद मिले हैं.

मौसम बदल रहा था और बारिश ने बग़ैर देर किये अपनी उपस्थिति दर्ज़ करा दी थी. ऐसे में आभा का पार्क जाना तक़रीबन बंद हो गया. उसे एहसास हुआ कि वह पार्क से ज़्यादा अनंत को 'मिस' करती है.

एक दिन अनंत ने फ़ोन पर अपने मन की बात कह दी.

आभा मुझे तुम्हारी याद आती है. तुमसे मिलने का मन हो रहा है, 'क्या मैं मिलने आ सकता हूं.'

आभा ने तुरंत मना कर दिया. उसे डर लगा कि बेटा-बहू क्या सोचेंगे.

'हम फ़ोन पर बात कर रहे हैं. यह कम तो नहीं अनंत.' कह आभा ने अपना मंतव्य स्पष्ट किया.

बहुत समय से बहू की नानी बीमार चल रही थी तो बेटे के साथ बहू नानी को देखने जाना चाहती थी.

आभा ने सहर्ष अपनी सहमति दे दी और समझाया कि दो दिन मैं अकेले रह लूंगी. तुम दोनों निश्िंचत होकर जाओ.

उसी रात उसे उल्टी और बेहद पेट दर्द शुरू हुआ. जो दवाइयां आभा के पास थीं, उसे लेने के बाद भी आराम नहीं हुआ. पूरी रात बेचैनी में कटी. बहुत कमज़ोरी भी थी. किसी तरह सुबह अनंत को फ़ोन किया. थोड़ी देर बाद अनंत डॉ. को लेकर आ गये. लिखी हुई दवाइयां लाकर दीं और इंज़ेक्शन लगाने वाले को भी घर लेकर आये. इंज़ेक्शन का असर था कि थोड़ी देर में आभा की आंख लग गयी.

जब आंख खुली तब तीन घंटे हो चुके थे. देखा तो अनंत अभी भी बैठे हैं. अनंत ने चाय बनाकर आभा को पिलायी.

आभा ने बेटे को फ़ोन कर आने का समय पूछा.

'अनंत तुम घर जाओ. अब मैं ठीक हूं.'

'नहीं आभा, जब तक तुम्हारा बेटा नहीं लौटता, मैं ऐसी हालत में तुम्हें अकेला नहीं छोड़ सकता.'

जैसे ही बेटा-बहू घर आये अनंत ने बेटे को आभा की हालत बता अपने रुके रहने का कारण स्पष्ट किया. शायद बेटे के चेहरे के भाव को अनंत ने पढ़ लिया था.

हालांकि आभा को बुरा लगा कि बेटे-बहू ने अनंत को चाय तक के लिए नहीं पूछा, ना ही अनंत को धन्यवाद कहा. आभा ने ऐसे संस्कार तो नहीं दिये थे अपने बेटे को.

लेकिन यह क्या? उल्टे आभा को बेटे की रोष भरी आवाज़ सुनायी दी.

'मम्मी! आपकी बहू ने मुझे पहले ही बताया था, कि आप पार्क में रोज़ किसी से मिलने जाती हो. इसीलिए आपने सब्ज़ी लाने से भी इंकार कर दिया था. पर मैंने इस बात पर ध्यान नहीं दिया.'

'अच्छा हुआ आज अपनी आंखों से देख लिया. यह देखकर तो ऐसा लग रहा है जैसे कि आप हमारे जाने का इंतज़ार कर रही थीं. हम जायें तो आप उन्हें घर बुला लें.'

एक तो बीमारी और दूसरे बेटे की कही बातों ने आभा का मुख मलिन कर आंखों के कोरों को गीला कर दिया.

पहली बार उसे किसी ने ऐसी चुभती बात सुनायी थी. वह भी उसके इकलौते बेटे ने. आभा ने उस समय कुछ कहना उचित नहीं समझा. इस कड़वे घूंट को चुपचाप पी गयी. यह सही वक़्त नहीं है. शब्दों की किरचें मन में गहरे तक चुभ कर घाव कर गयीं.

बिना कुछ कहे आभा ने डॉ. का पर्चा और दवाइयां बेटे की तरफ़ बढ़ा दीं.

सब देख बेटे का जवाब था. 'जो भी हो मम्मी, आपको हमें फ़ोन करना चाहिए था, बजाये उनके.'

'आप अकेले घर में किसी ग़ैर आदमी को कैसे बुला सकती हैं?'

'सबसे पहले बेटा! अनंत ग़ैर नहीं मेरे मित्र हैं.'

'बहू ने तुम्हें यह नहीं बताया? जब अनंत पहली बार आये थे इस घर में, तो मैंने बहू को यही परिचय दिया था उनका, 'ये मेरे मित्र हैं.'

'मेरी हालत ख़राब थी. तुम्हें फ़ोन करके बुलाती तो तुम्हें आने में तीन घंटे लगते. इसीलिए उन्हें बुलाया.'

बेटा चुप हो गया.

आभा ने मन ही मन निर्णय लिया. बेटे के घर एडज़स्ट होने की पूरी कोशिश करेगी. अगर बेटा नहीं चाहता है, तो वह अनंत से नहीं मिलेगी. आभा ने शाम को पार्क जाना बंद कर दिया और सुबह की सैर का समय भी बदल लिया. अनंत के कई फ़ोन आये पर आभा ने कोई फ़ोन रिसीव नहीं किया. लेकिन आभा अनंत के मैसेज़ का इंतज़ार ज़रूर करती.

बहुत अकेली पड़ गयी थी आभा. इतने बंधन तो विनय ने भी कभी नहीं लगाये उस पर.

आभा बेटे के यहां अकेलेपन की पीड़ा से उबरने आयी थी. पर यहां बेटे ने उन्हें बेहद अकेला और असहाय बना दिया था. अंदर का घाव कभी-कभी टीसने लगता था.

अचानक एक रविवार अनंत घर आ गये.

'क्या बात है आभा? आजकल पार्क नहीं आती हो. मेरा फ़ोन नहीं उठाती हो. मुझे लगा कि तुम्हारी तबियत तो फिर ख़राब नहीं हो गयी? सोचकर देखने आ गया.'

उस दिन बेटा घर पर था. अनंत को देखते ही उसका दिमाग़ ख़राब हो गया और क्रोध में अनंत को उसने घर से जाने को कह दिया.

'मम्मी! क्या पापा के जाने का कोई दुःख नहीं आपको? इतनी जल्दी आप उन्हें भूल गयीं.'

'बेटा! तुम्हारे पापा के साथ मैंने अड़तीस साल बिताये हैं. साल दो साल क्या, मैं अपनी आख़िरी सांस तक उन्हें नहीं भूल पाऊंगी. इस उम्र में जीवन साथी के बिछुड़ने की पीड़ा तुम क्या जानो. तुम्हारे पास तुम्हारी पत्नी है. उसके बिना अपनी ज़िंदगी की कल्पना कर देखो...? तब तुम्हें एहसास होगा कि इंसान को हर उम्र में एक साथी की ज़रूरत होती है. जो उसका ख़्याल रखे. उसके सुख–दुःख में उसका साथ दे. चाहे वह किसी भी रूप में हो. पति हो या मित्र.'

'बेटा! मेरी नौकरी के समय मेरे कई पुरुष मित्र थे.' तेरे पापा ने कभी एतराज़ नहीं किया.'

'मैं पापा नहीं हूं मम्मी.'

'तुम्हारी मां होने के साथ-साथ मैं एक इंसान भी हूं. अगर आज विनय नहीं हैं, तो क्या मुझे मित्रता करने के लिए महिला और पुरुष में भेद करना पड़ेगा?'

'मेरे मित्र का चुनाव भी अब तुम करोगे?'

'विनय के जाने के बाद मैं कितनी तन्हा हो गयी हूं. तुमने कभी अपनी मम्मी की इस पीड़ा को महसूस किया...?'

एक साथी की इच्छा रखना इतना बुरा है?

इस उम्र में भी मेरी ज़िंदगी मेरी अपनी नहीं. अपने जीवन का एक साधारण-सा फ़ैसला भी अब मुझे बेटे से पूछकर लेना पड़ेगा?

अपमान और अकेलेपन की सजा भुगतने मैं यहां नहीं आयी हूं. मेरे चुप रहने का यह मतलब कतई नहीं कि तुम्हारा हर फ़ैसला सही है. मैं घर में कोई क्लेश नहीं चाहती थी बस. मेरी कोई विवशता नहीं बेटा, जिसके लिए मुझे अपने मान-सम्मान को ताक पर रख जीना पड़े.'

आभा के अंदर का दबा धधकता लावा आज बह निकला.

बेटा निरुत्तर हो गया.

'जो भी हो मम्मी! मेरे घर में रहना है, तो मेरे हिसाब से चलना होगा.' बेटा फ़ैसला सुना अपने कमरे में चला गया.

एक पुरुष का वर्चस्व, दूसरा पुरुष अपने आप हासिल कर लेता है. पहले पिता, भाई, फिर पति और अब पुत्र.

घर का माहौल बोझिल होने लगा. घर की हवा में चुप्पी घुल कर फैल रही थी. बहू उन्हें ऐसे देखती मानों आभा ने कोई गंभीर अपराध कर दिया हो. बिना ग़लती किये, उन्हें उनके, अपने बेटे ने कटघरे में खड़ा कर दिया था. वह भी बहू के सामने. आभा का मन छटपटाने लगा.

बग़ैर अपराध किये यह कैसे अपराधबोध से घिर रही है आभा.

वह तो अच्छा है उसे पेंशन मिलती है और रहने के लिए उसके नाम पर घर है. अगर पैसों के लिए वह बेटे पर निर्भर होती तब...? उसकी कल्पना कर आभा सिहर उठी. कम से कम धरती पर टिके रहने की ताकत अभी उसके पैरों में शेष है.

पति के जाते ही क्या सभी इच्छाएं मर जाती हैं? जब तक जीवन है, तब तक उसकी ज़रूरतें भी जीवित रहेंगी. माना, शारीरिक ज़रूरत उतनी नहीं. लेकिन मन की बातें कहने के लिए, कोई तो अपना होना चाहिए.

कितने ही प्रश्न आभा के अंदर बवंडर के वेग की तरह घूमते रहे. विचारों का झंझावात रुकने का नाम नहीं ले रहा था. विनय के जाने की पीड़ा से यह पीड़ा कमतर नहीं थी.

ग़ज़ल

आंख वे हमको दिखाने आये

चंद्रसेन 'विराट'

उनकी मुट्ठी में जो दाने आये,
वे कबूतर को फंसाने आये।

आंख भी जो न मिला पाते थे,
आंख वे हमको दिखाने आये।

होश लाते थे ठिकाने सबके,
होश ख़ुद उनके ठिकाने आये।

मेरे तंबू को हटाने वाले,
मेरी जाजम को बिछाने आये।

कल तलक जो हमारे ग्राहक थे,
ख़ुद की दुकान जमाने आये।

होठ पे सच था तो बेबाक कहा,
झूठ आया तो बहाने आये।

बैठ कर बहती हुई लाशों पर,
कौए गंगा में नहाने आये।

डूबते को ही सलाहें तट से,
ख़ुद बचाने न सयाने आये।

सो गये ख़ुद ही जगाने वाले,
अब हमें कौन जगाने आये।

रूठकर हमसे गये थे आख़िर,
लौटकर हमको मनाने आये।

१२१, वैकुंठधाम कॉलोनी,
आनंद बाज़ार के पीछे,
इंदौर (म. प्र.)-४५२०१८

इतना अपमान आभा ने कभी महसूस नहीं किया था. रुके आंसू आंखों के बांध तोड़ वेग से बह निकले.

आभा की यह रात कुछ ज़्यादा लंबी और विचारों के सघन अंधेरे में जागते बीती. भोर की उजास के साथ मन ने फ़ैसला ले लिया.

सुबह-सुबह आभा ने अनंत को फ़ोन पर सारी बातें बतायीं और अपना निर्णय भी.

'मैं अपने घर वापिस जा रही हूं. शाम की ट्रेन से.'

'आभा अगर तुम चाहो तो मैं तुमसे शादी करने को तैयार हूं.'

'नही अनंत!'

'मैं अपने और बेटे के जीवन में विनय का विकल्प नहीं चाहती हूं. मैं तुमसे शादी कर विनय की यादों के साथ छलावा नहीं कर सकती. तुम मेरे दोस्त हो और हमेशा रहोगे.'

सुबह बेटे के उठने पर आभा ने उसे बताया कि मैं आज शाम की ट्रेन से वापिस जा रही हूं. सुनकर बेटा चुप रह गया. बेटे ने रोकने की कोशिश भी नहीं की.

शाम को बेटा आभा को ट्रेन में बिठा कर चला गया.

सुबह घर का दरवाज़ा खोलते ही आभा की नज़र सबसे पहले विनय की फ़ोटो पर गयी. दबी रुलाई फूट पड़ी. आभा फ़ोटो को गले लगा बहुत देर सिसकती रही. ऐसा लगा मानो विनय उसे सीने से लगा जीने का हौसला दे रहे हैं, हमेशा की तरह.

'मैं हूं ना! चिंता मत कर.'

आभा को आये कई दिन हो गये. आभा बहुत बार फ़ोन देखती, इस उम्मीद में कि शायद अनंत का कोई मैसेज़ या फ़ोन हो, परंतु हर बार निराशा हाथ लगती.

पहले सिर्फ़ विनय की यादें उसके ज़ेहन में उभरती थीं अब कभी-कभी अनंत की यादों का कारवां भी उनमें शामिल हो जाता.

ज़िंदगी एक बार फिर अपने ढर्रे पर चलने लगी. बड़ी मुश्किल से मन को समझाकर बेटे के यहां गयी थी. वहां से यादों के कसैले धुएं के अतिरिक्त मन में कुछ और समाकर नहीं ला पायी आभा.

कभी आभा का मन करता कि वह स्वयं अनंत को फ़ोन कर ले. पर तुरंत अपनी भावनाओं को जज़्ब कर लेती. उसका विश्वास खंड-खंड होकर बिखरा था. अब कोई नया त्रास नहीं झेलना. सोचते ही आभा का मन और फ़ोन लगाने को उठा हाथ, वहीं ठिठक जाता.

अचानक एक अलसुबह डोर बेल की आवाज़ से आभा की नींद टूटी. दरवाज़ा खोलते ही सामने अनंत को देख आभा आश्चर्यचकित रह गयी.

'अनंत तुम...?'

मैं तुमसे कुछ कहने आया हूं आभा. जो मैं फ़ोन पर नहीं कह सकता था. मैंने भी जीवनसाथी से बिछुड़ने का दर्द सहा है. अब एक मित्र को मैं नहीं खोना चाहता.

'मैं विनय का विकल्प नहीं, तुम्हारे जीवन में साथी बनकर रहना चाहता हूं.' बोलो आभा! क्या हम आजीवन अच्छे मित्र की तरह साथ नहीं रह सकते?'

कहकर अनंत ने अपना हाथ आभा की ओर बढ़ा दिया.

६/८ अमलतास परिसर
मनीषा मार्केट के पास, शाहपुरा
भोपाल म.प्र.- ४६२०३९
मो. -९८९३४२३०९५
ईमेल- archanamishra0507.am@gmail.com

''काव्य-वीणा सम्मान'' षष्ठम् हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित

कोलकाता की सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक चेतना जागरण केंद्र **'परिवार मिलन'** विगत सन २०१३ से प्रति वर्ष हिंदी काव्य कृति के लिए 'काव्य-वीणा सम्मान' दे रही है. इस वर्ष षष्ठम् सम्मान हेतु इच्छुक रचनाकारों से वर्ष २००५ के बाद प्रकाशित अपनी छंद-बद्ध कृति की चार-चार प्रतियां एवं पासपोर्ट आकार के दो चित्र अपने संक्षिप्त परिचय के साथ **परिवार मिलन** कार्यालय **(४, एस. एन. चटर्जी रोड, बेहाला, कोलकाता-७०००३८)** में भेजने का आग्रह किया जाता है.

कृति के भाव पक्ष एवं कला पक्ष अर्थात हृदयस्पर्शी विषय वस्तु, भावपूर्ण अभिव्यक्ति, लयात्मकता, सुललित छंद योजना तथा भाषा सौष्ठव पर विशेष ध्यान दिया जायेगा. सम्मान राशि **५१००० रु.** होगी तथा चयन समिति का निर्णय अंतिम एवं मान्य होगा. कृति भेजने की अंतिम तिथि दिनांक **२८.०२.२०१८** है.

आमने-सामने

'कौन बिना थपेड़े खाये कश्ती किनारे ला पाया है!'

✍ मधु प्रसाद

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा, डॉ. निरुपमा राय, सैली बलजीत, पलाश विश्वास, डॉ. रमाकांत शर्मा, हितेश व्यास, डॉ. वासुदेव, दिलीप भाटिया, माला वर्मा, डॉ. सुरेंद्र गुप्त, सविता बजाज, डॉ. विवेक द्विवेदी, सुरभि बेहेरा, जयप्रकाश त्रिपाठी, डॉ. अशोक गुजराती, नीतू सुदीप्ति 'नित्या', राजम पिल्लै, सुषमा मुनींद्र, अशोक वशिष्ठ, जयराम सिंह गौर, माधव नागदा, वंदना शुक्ला और गिरीश पंकज से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है मधु प्रसाद की आत्मरचना.

स्वयं से आमने-सामने होना यानी पीछे मुड़ कर देखना, गहरे कुएं में झुक-झुक कर झांकना और अंधेरे में कुछ खोजना उस अनमोल को जो खो गया है, वक़्त की जेबें टटोलना — शायद कुछ मिल जाय या फिर किसी चाहत, अलभ्य के पीछे दौड़ना — सब कुछ मुट्ठी में रेत जैसा फिसल चुका है फिर भी अभीप्सा वहीं की वहीं है. लेकिन इतना पानी निकल जाने पर भी शून्य नहीं है, कुछ तो बचा रह गया है तल में, कुछ हाथ भी लगा है और थोड़ी बहुत दौड़ भी सार्थक हुई है. शायद यही है जीवन से दो चार होने की उपलब्धि या साधना या जीवन दर्शन.

यादों के गलियारे का मुख्य द्वार जब खुलता है तब बचपन कुलांचे मारता, झूले पर बैठा या चोरी से तोड़ी गयी इमली या अमिया खाता हुआ, नदी किनारे रेत में सीपी, शंख ढूंढ़ता हुआ और परियों के देश की कहानी सुनता हुआ दिखता है. मेरा बचपन खुर्जा (उ. प्र.) की तंग गलियों में दौड़ता-फिरता, फ्राक पहने तेल से चुपड़े बालों की दो चोटी बनाये, पराग, नंदन, राजा भैया, बाल भारती, वेताल, रानी बिटिया, धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान आदि की रसीली कहानियां पढ़ते, पत्र मित्र स्तंभ के द्वारा मित्र बनाते, रंग भरो प्रतियोगिताओं में रंग भरते, शिशु गीत पढ़ते, झूमते बीता. पापा उस समय एन. आर. ई. सी. कॉलेज़ में अंग्रेज़ी के प्रोफ़ेसर थे. खुर्जा के इस कॉलेज़ की लाइब्रेरी बहुत बड़ी थी और समृद्ध भी. पापा वहां से हम सब भाई बहनों के लिए जापान की, चीन की, यूनान की लोक कथाएं ख़ूब लाते थे. पापा जहां भी रहे वहां के उस कॉलेज़ के सांस्कृतिक विभाग के सर्वेसर्वा रहे. नाटक मंचन, काव्य गोष्ठी आदि का सारा कार्यभार पापा संभालते थे. वे स्वयं भी बहुत अच्छा लिखते थे. उनकी लिखी सारी साहित्यिक रचनाएं, आलेख, निबंध, कविताएं आदि का संकलन लगभग तैयार है. सेवा निवृत्ति के बाद से मैं इसी महती कार्य में लगी रही हूं. पापा बहुत सुरीले गायक भी थे. शेक्सपीयर, मिल्टन, वर्ड्सवर्थ से लेकर सूरदास, तुलसीदास, कबीरदास, निराला, महादेवी

वर्मा, प्रेमचंद आदि से लेकर कालीदास, भवभूति, फिर ग़ालिब, मीर, ज़फ़र — मतलब हिंदी, उर्दू, अंग्रेज़ी, संस्कृत का शायद ही कोई लेखक या कवि हो जिसको पापा ने न पढ़ा हो या न जाना हो. रिटायरमेंट के बाद पापा ने ओशो का भी पूरा वाङ्मय पढ़ लिया था. बी. ए. में फ़ारसी उनका एक विषय था, अंग्रेज़ी और इतिहास के अतिरिक्त.

गुड़ियों के ब्याह करते, घर बसाते, छुपन छुपाई, पिट्ठू फोड़, आदि खेलने के दिनों में ही शेक्सपियर के नाटकों का कथाकरण रूप, टाल्सटॉय, प्रेमचंद, शरत चंद्र, रवींद्रनाथ टैगोर आदि से रिश्ता जुड़ गया था जो बाद में उच्च शिक्षा प्राप्त करते समय बहुत काम आया. सिन्ड्रैला, सोमबाला और सात बौने आदि और अन्य परीकथाएं बचपन को रूप रंग देती रहीं. यानी बचपन से ही पापा ने 'रीडिंग हैबिट' डलवा दी थी जो आज तक बनी हुई है.

पापा-मम्मी की जोड़ी मानो कॉम्पलिमेंट्री टू ईच अदर. मम्मी लखनऊ की थीं. उर्दू उनकी ज़ुबान में ऐसे घुली-मिली थी जैसे गन्ने में मिठास, उनको पढ़ाई-लिखाई, गायन, वादन, नृत्य, शेरो–शायरी सभी का बहुत शौक़ था. विवाह की पहली रात को अपने पति यानी हमारे पापा से अंग्रेज़ी में एम. ए. करवाने का वादा उपहार स्वरूप में लेने वाली मेरी मम्मी ने अपने पापा यानी हमारे नाना जी से भी यही कहा था — 'मैं बी. ए. किये बिना विवाह नहीं करूंगी.' नाना को झुकना पड़ा था. मम्मी ने लखनऊ विश्वविद्यालय से बी. ए. किया था. डॉ. राधा कमल मुखर्जी, डॉ. देव, डॉ. सिद्धांत आदि विद्वान शिक्षाविदों की मम्मी चहेती शिष्या रहीं. सिलाई, बुनाई, कढ़ाई के अलावा भोजन बनाने की कला में पारंगत. पापा ने प्रकारांतर में वादा निभाया और मम्मी ने फिर आगरा विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी में एम. ए. किया. इससे पूर्व वे बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से बी. टी. कर चुकी थीं. जब पापा की प्रथम नियुक्ति बिरला कॉलेज़ पिलानी में अंग्रेज़ी विभाग में हुई, तब मम्मी ने भी बिरला बालिका विद्यापीठ में अंग्रेज़ी शिक्षिका के रूप में ज़्वाइन किया. उस समय डॉ. भगवत शरण उपाध्याय की पत्नी श्रीमती देवकी अम्मा प्राचार्य थीं वहां. फिर १९७०-७१ में पापा मम्मी का डॉ. कन्हैया लाल सहल जी के निमंत्रण पर पिलानी जाना हुआ. जब पापा ने १९४४ में बिरला कॉलेज़ ज्वाइन किया था उस समय डॉ. कन्हैया लाला सहल हिंदी विभाग के अध्यक्ष थे और बिरला एज़ूकेशन ट्रस्ट के सेक्रेटरी भी.

उस कार्यक्रम का आयोजन, १९४०-१९५० के अध्यापकों को बुला कर अभिनंदन करने के लिए किया गया था. उस हृदयस्पर्शी, आत्मीय, भव्य कार्यक्रम की मैं साक्षी रही थी. तब पहली बार पिलानी और बिट्स को देखने का अवसर मिला. पापा के १९४४ के विद्यार्थियों से आज तक संपर्क बना हुआ है. अब वे भी ९० वर्ष के आस-पास हैं. यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे उनका स्नेह, सान्निध्य प्राप्त हुआ है. सर्वश्री राम निवास जाजू (दिल्ली), श्री त्रिभुवन पाल गोयल, श्री रेवती लाल शाह, श्री अंबू शर्मा (तीनों कलकत्ता वासी), डॉ. पद्मा उपाध्याय, डॉ. भगवत शरण उपाध्याय की बहिन और ए. के. पी. गर्ल्स कॉलेज़ खुर्जा से प्राचार्यापद से सेवा निवृत्त (अब नहीं हैं), वे अहमदाबाद मेरे घर भी आयी थीं. खुर्जा में मैं उसी स्कूल में पढ़ती थी जहां वे प्राचार्य थीं. बाद में वह स्कूल कॉलेज़ बन गया. यह थी परंपरा गुरू शिष्य की.

खुर्जा में पापा कवि सम्मेलनों का आयोजन करते थे. जिसमें श्री काका हाथरसी, श्री किशन सरोज, श्री भारत भूषण, श्री नीरज आदि गीत–ऋषियों का आगमन होता था. डॉ. भगवत शरण उपाध्याय जी को पापा ने सहारनपुर में महाराज सिंह कॉलेज़, जहां पापा अंग्रेज़ी विभाग के अध्यक्ष थे, भारतीय संस्कृति एवं इतिहास पर भाषण देने के लिए आमंत्रित किया था. वहीं एक कार्यक्रम में श्री विष्णु प्रभाकर जी के भी दर्शन हुए थे. जब पापा दिल्ली में रह थे उनके परम मित्र थे श्री गिरिजा कुमार माथुर. उनके और पापा के पत्राचार का संकलन मेरे पास सुरक्षित है. पापा के पुश्तैनी मकान जो अतरौली (ज़िला अलीगढ़) में था, उसके साथ वाला घर डॉ. नगेंद्र, दिल्ली विश्वविद्यालय से हिंदी विभाग के अध्यक्ष एवं प्रखर समालोचक का था. वे पापा को सदैव छोटे भाई की भांति स्नेह करते थे, क्योंकि अतरौली में वे साथ ही खेल कर बड़े हुए थे. पापा से उन्होंने विभिन्न विषयों पर बहुत सारे आलोचनात्मक आलेख लिखवाये थे. उन दोनों के पत्र भी हैं मेरे पास. जब पापा ने इलाहाबाद वि. वि. से अंग्रेज़ी में एम. ए. किया था उस समय वहां डॉ.

अमरनाथ झा, प्रोफ़ेसर शिवधर पांडे, डॉ. पी. ई. दस्तूर, डॉ. एस. सी. देव आदि शिक्षा शास्त्री थे जिनकी शिक्षण पद्धति और ज्ञान का पापा के ऊपर इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने शिक्षक बनने का निर्णय ले लिया जिसके कारण हमारे बाबा जी उनसे आजीवन नाराज़ ही रहे क्योंकि वे पापा को वकील बनाना चाहते थे. ऐसा था उस समय के शिक्षकों का प्रभाव.

मैंने यह इसलिए बताया कि आज यदि किसी विद्यार्थी से पूछती हूं तो सबका जवाब डॉक्टर, इंज़ीनियर ही होता है. मानो शिक्षक बनने की परंपरा ही दम तोड़ रही है.

मुझे यह स्वीकारते परमानंद की अनुभूति होती है कि प्रारंभ से ही या कहूं जन्मघुट्टी से ही मुझे अंग्रेज़ी, हिंदी, उर्दू, संस्कृत साहित्य की विराटता और वैविध्य का ज्ञान होता रहा. यह मेरा परम सौभाग्य भी रहा कि बचपन से ही घर का माहौल साहित्यिक, गीत, संगीत से भरपूर मिला. हमारे घर में आये दिन गीत-संगत, शेरो-शायरी की महफ़िल होती रहती थी. मेरे बड़े भाई साहब भी बहुत अच्छा गाते थे. भारतीय पुलिस सेवा में वर्षों कठोर भूमिका निभाते हुए भी उनके हृदय में गीत, संगीत जीवंत रहा जो आज भी है. सैकड़ों शेर मुंह ज़बानी याद हैं उन्हें जो मौक़े की नज़ाकत के अनुसार सुनाते रहते हैं. मेरे पास संगीत वादन में सितार एक विषय था जो इंटरमीडिएट से बी. ए. तक रहा. बड़े भाई साहब मेरे सितार के साथ तबले की संगत करते थे. इस प्रकार मेरी सितार की प्रैक्टिस होती थी.

मैं जब कक्षा नौ में थी जे. बी. एस. गर्ल्स इंटर कॉलेज़ में उस समय कक्षा मॉनीटर (अब नाम याद नहीं है) क्लास टीचर मैडम को रोज़ एक गुलाब का फूल कक्षा में घुसते ही दिया करती थी. उसके पिताजी शायद किसी बड़ी इंडस्ट्री में अच्छी पोस्ट पर थे. वो पढ़ाई में होशियार भी थी और संपन्न भी. फूल लेते ही मैडम बहुत हंस कर कहती — 'थैंक यू' यह दृश्य मुझे जैसे चोट पहुंचाता था क्योंकि मैं मैडम को फूल नहीं दे पाती थी. एक दिन मम्मी ने पूछ ही लिया क्या बात है, किसी से झगड़ा हुआ है. मैंने कहा नहीं और मैं रो पड़ी. मम्मी घबरा गयीं — क्या बात है. मैंने बताया वो क्लास मॉनीटर है न वो मैडम की फेवरैट है. तुम भी तो हो. मम्मी ने कहा. पर उतनी नहीं जितनी वो. क्योंकि वो मैडम को रोज़ एक गुलाब का फूल देती है. तो इसमें क्या? मम्मी को आश्चर्य हुआ. आपने क्यों नहीं बड़ा-सा घर

बह निकलीं यादें क्षण-क्षण की

✍ **मधु प्रसाद**

सोच रही हूं कब तक सहनी
पीड़ाएं मुझको जीवन की,
पलकों की चौखट पर ठिठकी
बह निकलीं यादें क्षण-क्षण की.

एक समय था मन जब उड़ता
डोर बिना जैसे पतंग हो,
बादल को इठलाकर छूता
जैसे पुरवाई दबंग हो.
दौड़ पकड़ में कब थकते थे
बातें होती घर आंगन की,

रसवंती तरुणाई तन में
मादक सिहरन भर जाती थी,
कलियों के मिस भंवरे के घर
कभी चिठ्ठियां घर आती थीं.
उपवन को जाकर बतलाती
गाथाएं बहकी चितवन की,

पर्वत को छू-छू कर आते
आंखों के सतरंगी सपने,
प्रियतम की छवि निरख-निरख कर
अरुणाई लगती थी कंपने,
दरपन की धड़कन बढ़ जाती
सुन कर बातें आलिंगन की,

यादों की खिड़की से वे दिन
क्या जाने कब उतर गये हैं,
छूप छांव में ऐसी बदली
घुटन भरे पल पसर गये हैं.
अब नीरव रातें सम्मुख हैं
नहीं प्रतीक्षा समीकरण की,

हवन हो गया आसव पालव
ख़ुशबू चली गयी अब घर से,
इठलाती थी जिसको पाकर
निकल गया वह समय इधर से,
सूखे पत्ते तांडव करते
हंसी उड़ाते संप्रेषण की.

लिया जहां बग़ीचा होता और मैं भी रोज़ फूल तोड़कर ले जाती. मम्मी मुझे देखती रह गयीं. पर तुरंत बोलीं, 'बेटा फूल से कुछ नहीं होता. तुम ख़ूब पढ़ो-लिखो. अपना जीवन फूल से भी अच्छा बनाओ. सब प्यार करेंगे. मम्मी की बात गांठ बांध ली. ख़ूब मन लगा कर पढ़ने लगी. कक्षा नौ में आठ सेक्शनों में प्रथम आयी. वह स्कूल सहारनपुर का सबसे बड़ा और प्रतिष्ठित विद्यालय था. स्टेज़ पर इनाम देने के लिए बुलाया गया. प्रिंसिपल मैडम ने सारे विद्यालय के सामने मुझे सम्मानित किया. क्लास टीचर मैडम ने मेरी हैंड राइटिंग की प्रशंसा की. मेरी आंखों में आंसू आ गये. अरे रोती क्यों है आज तो बहुत ख़ुशी का दिन है. पर मैं आपको कभी फूल नहीं दे पायी. मेरे घर इतना बड़ा नहीं है जहां बग़ीचा... अरे लो मैं तुम्हें फूल देती हूं. उन्होंने विद्यालय उद्यान से एक गुलाब का फूल तोड़ा और मुझे दिया. पूरी कक्षा ने तालियां बजायीं. क्लास मॉनीटर ने भी. वो सेकन्ड आयी थी. हां, लेकिन उस दिन के बाद उसने क्लास टीचर को फूल नहीं दिया और फूल देकर जिस तरह वो क्लास पर नज़र डालती थी वह भी बंद हो गया. हाईस्कूल और इंटर मीडिएट में वह भी प्रथम आयी, पर मेरे नंबर उससे हमेशा ज़्यादा आये. यह घटना तब ताज़ी हुई जब मैंने केंद्रीय विद्यालय ज़्वाइन किया और एक छात्रा मुझे रोज़ फूल देने लगी. पर मैंने शीघ्र ही उससे कहा बेटा तुम्हारे नंबर मेरे लिए फूल समान होंगे. तुम ख़ूब पढ़ो और फूल जैसी बनो — महकदार और सबकी प्रिय.

मेरी पहली कविता मेरे विद्यालय की पत्रिका में छपी थी. उस समय विद्यालय पत्रिका में किसी विद्यार्थी की रचना का चयन होना बड़ी बात थी. यह बात १९७२ की है जब मैं इंटरमीडिएट में थी. न जाने कितनी बार वह कविता पढ़ती रही थी क्योंकि पहली बार कुछ प्रकाशित हुआ था. फिर तब से लिखने का सिलसिला शुरू हुआ. कॉलेज़ स्तर पर निबंध प्रतियोगिताओं और काव्य प्रतियोगिताओं में सदैव भागीदारी रही. स्कूल से ही मंच पर किसी न किसी रूप में उपस्थिति रहती थी. फिर केंद्रीय विद्यालय ज़्वाइन करने के बाद विद्यालयी कार्यक्रमों का आयोजन-संयोजन बहुत गरिमापूर्ण तरीक़े से करती रही. एक बार पापा अहमदाबाद आये थे. शायद १९८२-८३ में. कमरे में एक मुड़ा-तुड़ा काग़ज़ पड़ा था. पापा ने उठा लिया, खोला और पढ़ा. उसमें मेरी लिखी हुई एक कविता थी. पापा बोले बड़े सुंदर भाव हैं. ये किसकी पंक्तियां हैं? मैंने कहा पापा मैंने ही लिखी हैं पर मुझे ये बेकार लगीं तो मोड़ कर फेंक दिया. पापा ने पूछा क्या तुम ऐसे ही करती हो? ये तो बड़ी ख़राब बात है. क्या पहली कविता से ही महादेवी वर्मा जैसा परफ़ेक्शन आयेगा? सब की प्रारंभिक अभिव्यक्ति थोड़े ही परफ़ेक्ट हो जाती है. यदि पहली बार में ही सब कुछ पा लिया तो आगे बढ़ने की लालसा कहां रहेगी? धीरे-धीरे निखार आता है, भाषागत सौंदर्य पनपता है, गंभीरता आती है. अब ऐसे कभी मत फेंकना. एक डायरी बनाओ. उसमें लिखा करो जिससे तुम्हें ख़ुद तुम्हारी प्रोग्रेस का पता चलेगा. तुम उनको मांज सकोगी. अपने को आंक सकोगी. मैंने पापा की बात गिरह में बांध ली. फिर कभी लिख कर नहीं फेंका.

एक विद्यालयीन घटना — जब मैं इंटरमीडिएट में थी तब विद्यालय यूनियन के चुनाव हुए. मैंने भी यूनियन प्रैसीडेंट के लिए खड़े होने का परचा भर दिया. मेरी सहेलियों — इंदु, मधु, सुषमा आदि ने ख़ूब कन्वैसिंग की. ढ़ाई हज़ार छात्राओं का विद्यालय था. कार्ड छपवाये. ख़ूब मेहनत की. मेरे विरोध में जो छात्रा थी वो बहुत ख़ूबसूरत थी. एकदम हीरोइन जैसी. इलेक्शन में वो जीत गयी. शायद ख़ूबसूरती के कारण. मैंने उस समय यही सोचा था. वो यूनियन अध्यक्ष बनी और विद्यालय की ग्रुप फ़ोटो में प्राचार्य के पास बैठकर फ़ोटो खिंचवायी. फिर बोर्ड परीक्षाएं आयीं और वो फ़ेल हो गयी. मैं प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण हुई. फिर तो ऐसा हुआ जब मैं बी. ए. करके विद्यालय से निकली (मुन्नालाल गर्ल्स पी. जी. कॉलेज़, सहारनपुर), तब वह बी. ए. प्रथम वर्ष में थी. तभी यह बात भी सीखी कि पढ़ाई-लिखाई का जीवन में कितना महत्त्व है. हालांकि तब उस इलेक्शन में असफल होने पर मैं बहुत रोयी थी. मेरी बड़ी दीदी ने तब मुझे बहुत समझाया था और मेरा खोया आत्मविश्वास वापिस लौटाने में मेरी बहुत मदद की थी.

जीवन यात्रा शायद किसी की भी सहज नहीं रहती. इस यात्रा में कठिनाइयां एवं विसंगतियां ऐसे जुड़ी रहती हैं मानो इनको पार किये बिना आगे बढ़ने का कोई अर्थ ही नहीं. लेकिन यात्रा चलती रहती है. उम्र के गलियारों से गुज़रती रहती है. इस दुर्गम यात्रा में भी बहुत से सहयोगी बने, बहुत से असहयोगी. दोनों को प्रणाम. 'तू डाल दे कश्ती तूफां में कश्ती का ख़ुदा ख़ुद हाफ़िज़ है.' कोई भी यात्रा सदगुरू के मार्गदर्शन के अभाव में गंतव्य तक पहुंचने

में ठोकरें खाती रह जाती है या मार्ग से हट जाती है. यह मेरा सौभाग्य रहा कि सदगुरू के रूप में मुझे हिंदी साहित्य के यशस्वी, मनस्वी साहित्यकार डॉ. किशोर काबरा सर का सारस्वत सान्निध्य प्राप्त हुआ. मझे छंद का ही नहीं जीवन और संघर्ष और जीवंतता को जानने–समझने और विपरीत परिस्थितियों में संतुलन बनाये रखने का, स्वयं का आकलन करने का सुयोग मिला. चूंकि वे भी केंद्रीय विद्यालय से उप-प्राचार्य पद से सेवा निवृत्त हुए थे अत: शिक्षकों एवं विद्यार्थियों से अपार स्नेह रखते हैं. अत: मेरा उनसे पारिवारिक एवं गुरू–शिष्य जुड़ाव हुआ और उनका शिष्यत्व प्राप्त हुआ. यह किसी पूर्व जन्म के पुण्य का प्रतिफलन प्रतीत होता है.

पारिवारिक, रचनात्मक एवं साहित्यिक माहौल ऐसा रहा कि मात्र उन्नीस वर्ष की आयु में मेरे दूसरे नंबर के बड़े भइया ने पापा को अपना निर्णय सुना दिया कि वे बंबई जायेंगे और वहीं अपना कैरियर बतौर गीतकार बनायेंगे. वे तब बी. एससी. की परीक्षा दे चुके थे और रिज़ल्ट का इंतज़ार किये बिना अपने लिखे लगभग एक हज़ार गीतों, दृढ़ निश्चय, कठोर श्रम करने का साहस और बंबई ही जाने का ज़ज़्बा लिये वे एक अनजानी राह पर निकल पड़े थे. पूरा बंबई उन्हें रटा था जैसे कितने क़दम चल कर कहां पहुंचा जा सकता है. ये कोई राजेश जौहरी से पूछ सकता था क्योंकि संघर्ष करते–करते पूरा बंबई उन्होंने पैरों से नाप लिया था. उनके श्रद्धांजली कार्यक्रम में अनूप जलोटा जी ने बताया कि उन्होंने राजेश जी के लिखे लगभग १०० भजन गाये हैं. ''परी हूं मैं, मुझे छुओ न'' जैसे गीतों को रचनेवाले मेरे भाई जो पापा की वह क़िताब जो मैं संपादित कर रही हूं, उसके लिए कुछ पृष्ठ लिखने वाले थे, असमय हमसे विदा ले गये. वे गीतकार, भजनकार, कम्पीयर, वायस ओवर, जिन्गल राइटर और न जाने क्या-क्या थे. अब उनकी पत्नी श्रीमती अर्चना जौहरी उनके अधूरे कामों को पूरा करने में संलग्न हैं.

बचपन से ही मुझे पहाड़, नदी, झरनों का सामीप्य अच्छा लगता रहा है जो आज भी है. मुझे पहाड़ों पर जाना, रहना, वे ऊंचे-ऊंचे देवदार, पहाड़ों से निकलती नदियां, बादलों से ढका, दुबका सूरज, ठंडी शामें और बांसवनों की ध्वनियां सुनाती रातें. मेरी तीसरी भाभी कश्मीरी हैं. मेरे तीसरे बड़े भाई और भाभी दोनों साइंटिस्ट हैं. जम्मू रीज़नल रिसर्च लैबोरेट्री में. भइया अब सेवा निवृत्त हैं. हम दोनों भाई-बहन कम ('कम' अंग्रेज़ी वाला) सखा अधिक हैं. शायद उम्र का फ़ासला कम होने से ऐसा हो. वे साइंस के विद्यार्थी रहे किंतु संगीत एवं कविता प्रेमी व प्रशंसक हैं. मेरे गीत बहुत ध्यान से सुनते हैं और बहुत ख़ुश होकर प्रोत्साहित करते हैं.

मेरी मम्मी में अदम्य आत्मविश्वास एवं धैर्य था. मम्मी ने उस समय लखनऊ वि. वि. से बी. ए. करने का दृढ़ निश्चय किया था, जब लड़कियों को घर से निकलने की इज़ाज़त ही नहीं होती थी. वे इक्के में बैठकर यूनिवर्सिटी जाती थीं जिसके दोनों तरफ़ कपड़ा लगाया जाता था. उस समय अपने ख़ानदान में बी. ए. करने वाली वे पहली महिला थीं. जब पापा ने बिरला कॉलेज़ ज्वाइन किया था. उस समय १०० रु. पापा को और ६० रु. मम्मी को तनख़्वाह मिलती थी. जीवन के तमाम अवरोधों, आर्थिक विपन्नता और कठिनाइयों का मम्मी-पापा ने मिल कर सहजता से निर्वहन किया. न तो मम्मी ने कभी अपने संपन्न मायके की ओर रुख़ किया और न पापा ने एकलौता पुत्र होने के बावजूद अपने समृद्ध पिता का प्रश्रय लिया. पापा के वकील न बनने के कारण उन्होंने कभी पापा की आर्थिक विपन्नता को शेयर नहीं किया.

पारिवारिक विसंगतियां किसके जीवन में नहीं हैं? कौन बिना थपेड़े खाये कश्ती बचाकर किनारे तक ला पाया है? उन सबका उल्लेख या बार-बार स्मरण करना यानी अतीत से चिपके रहना है. अतीत का स्मरण वर्तमान से दूर कर देता है. इसलिए वे पृष्ठ मैं नहीं उलट-पलट रही हूं. यह मेरा सौभाग्य रहा कि विद्यालयी व्यस्तता सामाजिक एवं पारिवारिक दायित्व एवं कामकाजी महिला के जीवन से जुड़ी अनेक समस्याओं का यदि मैं सामना कर सकी तो अपने पतिदेव श्री उमेश प्रसाद के निरंतर सहयोग के कारण. वे भी तीन वर्ष पूर्व ओ. एन. ज़ी. सी. से सेवा निवृत्त हुए हैं. जीवन के अन्य महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व निभाते हुए मैं मां शारदे की कृपा से जो शब्द साधना, आराधना कर सकी हूं वह भी उनके सहयोग के कारण. वे इंज़ीनियर रहे. मैथ्स के प्रखर विद्यार्थी. अत: भले ही मेरी कविताएं आदि न पढ़ते हों पर पूरी डाक व्यवस्था उनके हाथों चलती है. वे मेरे पत्र आदि रज़िस्ट्री करवाना, लंबी लाइन में खड़े होकर भी करवाते रहे हैं. मेरी अनुपस्थिति में मेरे पत्र, मैगज़ीन्स संभाल कर रखते हैं. काव्य गोष्ठियों में जाने को प्रोत्साहित

करते रहते हैं. कभी कहीं कोई अवरोध नहीं. मेरी प्यारी बेटी श्रुति और मेरा पुत्र चिरंजीव चंदन मेरी काव्य-यात्रा के अनन्य साथी हैं. घर पर आयोजित काव्य गोष्ठी हो या कवि मित्रों का आगमन दोनों बढ़-चढ़ कर हाथ बंटाते हैं. बिटिया पति चिरंजीव उत्सव के साथ अब विदेश जा बसी है.

मैंने बहुत छोटे में ही शिक्षक बनने का निर्णय ले लिया था. मेरे ऊपर भी मेरे पापा का बहुत प्रभाव था. उनसे घर पर और अंग्रेज़ी में एम. ए. करते समय क्लास में बैठ कर पढ़ने का आनंद ही कुछ और था. तब यही सोचती थी मैं भी पापा जैसी शिक्षक बनूंगी. अब यह बहुत संतोष एवं गर्व से कह सकती हूं कि मेरा शिक्षक बनना सफल रहा. मुझे मेरे शिष्यों का अपार प्रेम एवं सम्मान मिला है. उनसे मुझे प्रेरणा मिली है. मेरे शिष्य कक्षा में आग्रह करके गीत सुनते थे और बहुत आनंद से मुझे ऊर्जायित करते रहे. यह गुरू-शिष्य परंपरा मेरे शिष्य सतत निभाते रहे हैं और आज भी निभा रहे हैं.

यह मां शारदे की अनंत अहैतुकी कृपा है जो मुझे रचनात्मक संस्कार मिले, साहित्यिक वातावरण मिला, गुरूजनों का सत्संग मिला, शिखरस्थ रचनाकारों से जुड़ाव हुआ, महान विभूतियों के दर्शन का सुयोग मिला, प्रखर, प्रबुद्ध संपादक मिले जो स्वयं भी रचनाकार हैं और एक जागरूक साहित्यिक पाठक वर्ग तैयार कर रहे हैं. पत्रिकाओं के माध्यम से विद्यार्थियों के एक बड़े वर्ग से बहुत कुछ सीखने का अवसर मिला. आत्मीय स्वजन मिले, रसिक श्रोता मिले, प्रशंसक मिले और कुछ हंसने वाले मिले, भाव मिले, अभाव मिले, अनुभव मिले जिससे मैं चेतना और ध्यान जगत की साक्षी रह पायी और नैराश्य और अवसाद के क्षणों में संचित अपनी अनुभूतियों के संप्रेषण का मार्ग या माध्यम ढूंढ़ पायी और अभिव्यक्ति का सामर्थ्य जुटा पायी. यह बताना अपरिहार्य है कि गुजरात के साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं शालीन वातावरण ने मेरे लेखन को ऊर्जायित एवं प्रोत्साहित किया है.

२१, गोकुलधाम सोसायटी,
चांदखेड़ा, अहमदाबाद-३८२४२४
मो. : ९५५८४२४७८८
ई-मेल : prasad.umesh51@gmail.com

लघुकथा

विरासत

सेवा सदन प्रसाद

रोगशय्या पर पड़ा पिता और समक्ष उसका स्नेहाकांक्षी. पिता कुछ कहने को व्याकुल और पुत्र उनकी मनोव्यथा सुनने को आतुर. पिता ने तब स्पष्ट कहा — "बेटा, मेरे पास इस मकान के सिवा कुछ भी नहीं है. जो भी था, सब तेरी परवरिश और पढ़ाई में ख़र्च कर डाला. आज गर्व है कि मेरा बेटा विदेश में एक अच्छी पोस्ट पर है. बस जो कुछ है — इसी आलमारी में है.

पुत्र आश्चर्य में पड़ गया. लोग क़ीमती सामान या तो बैंक लॉकर में रखते हैं ता तिज़ोरी में. पुत्र की मनोस्थिति को भांपते हुए एक लेखक बाप ने सच्चाई पर से पर्दा हटाते हुए कहा — "बेटा, इस आलमारी में मेरी प्रकाशित पुस्तकें, अप्रकाशित पांडुलिपियां, पाठकों/लेखकों के प्रशंसा-पत्र और कुछ स्मृति चिन्ह हैं. यही मेरी अमानत है, जिसे मैं तुम्हें सौंपना चाहता हूं.

पुत्र को पता है पिताश्री ने सारी ज़िंदगी साहित्य साधना में बितायी है. अतः पुत्र ने गर्व से कहा — "पापा, इस घर को मैं साहित्यिक संग्रहालय बनवा दूंगा... अप्रकाशित पांडुलिपियां प्रेस में भिजवा दूंगा... सारे प्रशंसा-पत्रों का एक एलबम बनवाऊंगा... आपके पुरस्कार और स्मृति चिन्ह तो इस ख़ानदान की धरोहर बनी रहेगी, क्योंकि यही तो मेरी विरासत है."

काफ़ी पीड़ा के बावजूद एक पिता की आंखों में ख़ुशी की चमक छा गयी.

६०१, महावीर दर्शन, प्लॉट नं. ११ सी, सेक्टर-२०,
खारघर, नवी मुंबई-४१०२१० मो. : ९६१९०२५०९४
ई-मेल : psewasadan@gmail.com

सागर/सीपी

'स्थायित्व के लिए 'तप' ज़रूरी है!'

बलराम अग्रवाल

*(एक लेखक का जन्म कब होता है? ठीक-ठीक बता पाना मुश्किल है. कभी पढ़ते-पढ़ते, कभी कुछ देखते-देखते ही क़लम कब हाथ में आ जाती है पता ही नहीं चलता. बलराम जी ने क़लम के साथ एक लंबा सफ़र तय किया है. उनका बालमन पढ़ने का बेहद शौक़ीन था. बचपन की एक घटना का उल्लेख उन्होंने अपने लघुकथा संग्रह 'ज़ुबैदा' की भूमिका में किया है जो उन्हें संवेदना, धैर्य, लगन सिखा गयी थी. उन्होंने लिखा है कि उनके घर के पास एक पोखर था जहां मरी हुई भैंस आदि जानवरों को डाला जाता था. उनकी खाल निकालने कारीगर आते थे. वो कैसे बड़े धैर्य से, ख़ून की एक बूंद भी गिराये बग़ैर व खाल को नुक़सान पहुंचाये बग़ैर अपने कार्य को करते थे! यह देखकर वे रोमांचित हो उठते थे; लेकिन उनका मन उस व्यक्ति की विवशता पर रो पड़ता था जो वस्तुत: चमड़ा-मज़दूर ही होता था, चमड़ा-व्यापारी नहीं. कल जो आंसू किसी की विवशता, किसी के दर्द पर गिरे थे वो आज शब्द बन गये हैं. लेखन उनकी आत्मा की प्यास है. आज के दौर में एक सफल लेखक की साहित्यिक यात्रा को समझना बहुत ज़रूरी है. जब अधिकतर लोग सफलता के लिए भाग रहे हैं, बलराम जी के लेखन में हम एक गहराई, एक धैर्य पाते हैं. पिछले दिनों उनके अध्ययन और लेखन से जुड़े कुछ मुद्दों पर मैंने उनसे सवाल किये और उन्होंने सहज अंदाज में उन सबके जवाब दिये. तो आइए, जानते हैं बलराम जी के शब्दों में उनकी दिल से क़लम तक की यात्रा का वर्णन — **सीमा जैन.**)*

❍ आपकी पहली दोस्ती क़िताबों से हुई या क़लम से?

पहली दोस्ती नि:संदेह क़िताबों से ही हुई.

❍ किन क़िताबों से?

पिताजी हम भाई-बहनों में नैतिक और आध्यात्मिक व्यवहार को रोंपना चाहते थे. इसलिए गीता प्रेस गोरखपुर की गुरु और माता-पिता के भक्त बालक, वीर बालक, सचित्र कृष्णलीला, सचित्र रामलीला जैसी क़िताबें वो हमारे लिए लाते थे. कोर्स के अलावा सिर्फ़ यही क़िताबें थीं जिन्हें हम खुल्लमखुल्ला पढ़ सकते थे. इनके अलावा अच्छी-बुरी हर क़िताब हमें छिपकर पढ़नी पढ़ती थी. पकड़े जाने पर पिटाई होना लाज़िमी था. बाबा को स्वांग और आल्हा आदि देखने-सुनने का शौक़ था. उनके खजाने में किस्सा हातिमताई, किस्सा सरवर नीर, किस्सा बिल्व मंगल, किस्सा तोता मैना, आल्हा ऊदल, तेनालीराम, अकबर बीरबल, सिंदबाज ज़हाजी जैसी लोक गाथाओं की सैकड़ों पुस्तकें थीं. उनके देहावसान (१९६६-६७) के बाद उस गट्ठर से चुराकर मैंने एक-एक क़िताब पढ़ी. बड़े चाचा (उन्हें हम सभी भाई-बहन 'बाबूजी' कहा करते थे) उत्तर प्रदेश सिंचाई विभाग में ट्यूबवेल ऑपरेटर थे. अपनी क़िताबों से भरा एक छोटा संदूक एक बार वे घर पर छोड़ गये क्योंकि बार-बार स्थानांतरण के कारण क़िताबों का रख-रखाव ठीक से नहीं हो पाता होगा. उस बे-ताला खजाने में बृहद हस्त सामुद्रिक शास्त्र, बृहद इंद्रजाल, बृहद कोकशास्त्र मुझे पढ़ने को मिले. यह भी १९६७-६८ के दौर की बातें हैं. छोटे चाचा जी की रुचि साहित्यिक पुस्तकों और पत्रिकाओं में थी. धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, चंदामामा, पांचजन्य, राष्ट्रधर्म जैसी पत्रिकाएं उनके माध्यम से पढ़ने को मिलती रहती थीं; लेकिन पढ़ना उन्हें भी छिपकर ही होता था. माताजी के संदूक में 'दमनक करटक' नाम की एक क़िताब बहुत सहेजकर रखी होती थी. मोटे अक्षरों में छपी वह एक सचित्र क़िताब थी जो बड़े मामा जी ने उन्हें भेंट की थी. उसे पढ़ने का समय वह शायद ही कभी निकाल पायी हों. समझदार हो जाने पर माता जी ने उसे मुझे सौंप दिया. इस तरह पंचतंत्र की कुछ कहानियां बचपन में ही पढ़ने को मिल गयी थीं; हालांकि तब पता नहीं था कि वे पंचतंत्र की कहानियां थीं. मुहल्ले में एक युवा मित्र थे—बनारसी दास जी. एक मकान की बाहरी कोठरी में किराए पर रहते थे. विवाहित थे और बाल-बच्चेदार भी. हम तब किशोर ही थे. एक बार उन्हें १५-२० दिन के लिए शहर से बाहर जाना पड़ा. चोरी

बलराम अग्रवाल

सीमा जैन

आदि से बचने और देखभाल करते रहने की दृष्टि से अपने कमरे की चाबी मुहल्ले में ही मेरे मित्र किशन की माता जी को सौंप गये थे. उनसे चाबी ले हमने दोपहर का समय बनारसी दास जी के कमरे पर बिताना शुरू करने का फ़ैसला किया. वहां पहले दिन ही 'कारूं का खजाना' हमें मिला—चंद्रकांता, चंद्रकांता संतति के सभी और भूतनाथ के कुछ खंड. लोगों ने जिन क़िताबों को पढ़ने के लिए हिंदी सीखी, वे लगभग सब की सब हमारे सामने रखी थीं. हम दोनों उन सारी क़िताबों को चाट गये. ये वो दिन थे, जब सब-कुछ पढ़ लेने का समय हमारे पास था. अब हम चुनिंदा चीज़ों को ख़रीदकर घर तो ले आते हैं लेकिन उन्हें बमुश्किल ही पढ़ पाते हैं.

❍ यानी आपकी क़लम से दोस्ती बाद में हुई?

बेशक किताबों ने ही कलम से दोस्ती का रास्ता खोला, उसे साफ़ किया.

❍ किस उम्र से लेखन शुरू किया?

लिखना शुरू करने की भी एक प्रक्रिया रही, सीधे लिखना शुरू नहीं हुआ. १९६५ में भारत-पाक युद्ध के समय मैं सातवीं कक्षा का विद्यार्थी था. युद्ध के उपरांत विद्यालय में कविता-कहानी आदि पठन-पाठन, मौखिक वाचन की प्रतियोगिता आयोजित की गयी थी. उसमें मैंने 'पांचजन्य' में छपी एक कविता को पढ़ने का निश्चय किया. घर पर किसी को बताने का सवाल ही नहीं था, रोक दिया जाता. कक्षा पांच में एक अंतरविद्यालय नाटक प्रतियोगिता में भाग लेने के बाद वह मेरा पहला सार्वजनिक प्रदर्शन था. मुझे अच्छी तरह याद है कि कविता-पाठ के समय मेरा पूरा बदन कांप रहा था. शायद आगे प्रोत्साहित करने की दृष्टि से मुझे 'सांत्वना पुरस्कार' प्रदान किया गया. मेरे जीवन का वह पहला सम्मान पत्र था जो अब मेरे पास नहीं है. परिवार में उस सब पर गर्व करने और उसे बचाये रखने की परंपरा नहीं थी. मुझे याद है कि उसी उम्र में मैंने कबीर के दोहे या मीरा के पद जैसा कुछ लिखना शुरू किया था, लेकिन पिताजी के डर से, लिखे हुए उन काग़ज़ों को मैं फाड़कर फेंक देता था. प्रामाणिक रूप से बताऊं तो पहली प्रकाशित रचना महात्मा गांधी के जन्म शताब्दी वर्ष १९६९ में लिखी गयी थी जो विद्यालय की ही पत्रिका में छपी. उसमें मेरी अन्य रचनाएं भी छपीं और वहीं से लेखन की निरंतरता भी बनी.

❍ क्या परिवार सहयोग देता तो लेखन की ऊंचाइयां कुछ और हो सकती थीं?

लेखन को ऊंचाई 'सहयोग' की बजाय 'दिशा' देने से मिलती है. यह 'दिशा' निरंतर अध्ययन के द्वारा हमें स्वयं प्राप्त करनी पड़ी.

❍ आप किस-किस विधा में लिखते हैं?

लेखन की विधा वह कहलाती है जिसमें व्यक्ति कायिक ही नहीं मानसिक रूप से भी 'निरंतर' बना रहता हो. इस आधार पर लेखन की मेरी मुख्य विधा 'लघुकथा' ही ठहरती है. इसके अलावा कविता, कहानी, बालकथाएं, बाल एकांकी/नाटक, आलोचनात्मक लेख, अनुवाद, समीक्षा, संपादन समय-समय पर प्रकट होते ही रहते हैं.

❍ अब तक आपकी प्रकाशित पुस्तकें? आपकी प्रिय पुस्तक? आपकी लिखी व पढ़ी गयी दोनों?

इस प्रश्न के कुछ हिस्से का उत्तर तो आपके द्वारा वांछित परिचय में मिल जायेगा. अंतिम हिस्से के उत्तर स्वरूप अनेक पुस्तकें हैं जो मुझे प्रिय रही हैं—जैनेंद्र का त्यागपत्र, मोहन राकेश की सभी कहानियां और नाटक, मुक्तिबोध की डायरी, डॉ. रामविलास शर्मा की आलोचना दृष्टि, प्रसाद की कथा-भाषा और महादेवी वर्मा और राहुल

सांकृत्यायन का गद्य आदि के अलावा भी बहुत-सी बातें हैं जो मुझे पसंद हैं.

❍ क्या दुःख हमें मांजता है?

'रहिमन विपदा हू भली, जो थोरे दिन होय'—दु:ख अगर लंबे समय तक टिक जाये तो व्यक्ति को मांजने की बजाय भांजना शुरू कर देता है; तथापि दु:ख के दिन व्यक्ति को सांसारिक अनुभव तो देते ही हैं और उस दौर से सकुशल बाहर आ निकला व्यक्ति ही यह कहने की स्थिति में होता है कि 'दु:ख हमें मांजता है.' दु:ख के दिनों को दूसरों के आगे बयां करने का सुख किसी भी अन्य सुख की तुलना में बड़ा, रोचक और रोमांचक होता है, यह मैं अपने अनुभव से कह सकता हूं.

❍ आलोचनाओं को आप किस नज़र से देखते हैं?

साहित्यिक रचनाओं के संदर्भ में, सबसे पहले तो आलोचना करने वाले व्यक्ति के बौद्धिक स्तर पर नज़र डालना ज़रूरी है. यदि वह साहित्य मर्मज्ञ नहीं है, हमसे निम्न बौद्धिक स्तर का है, तो मेरा मानना है कि उसके द्वारा की गयी प्रशंसा भी बेमानी यानी निरर्थक है. इसके विपरीत, उच्च बौद्धिक स्तर के व्यक्ति द्वारा की गयी कटु टिप्पणी पर भी ध्यान देना मैं श्रेयस्कर समझता हूं. उदाहरण के लिए बता दूं —'चन्ना चरनदास' की समीक्षा करते हुए वरिष्ठ कथाकार विजय जी ने मुझसे कहा—'बलराम, तुम्हारी कहानियों का अंत लघुकथा की तरह हो जाता है. इस बात पर ध्यान दो.' डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने उन कहानियों की सपाटता की ओर इंगित किया. मैंने दोनों ही अग्रज विद्वानों की बात का ध्यान परवर्ती कथाओं में रखना शुरू किया. कितना सफल रहा, यह तो शेष आलोचक बतायेंगे या फिर, आने वाला समय.

❍ लघुकथा के क्षेत्र में आपका योगदान आने वाली पीढ़ी के लिए मार्गदर्शक है. आज आप लघुकथा को जिस स्थान पर पाते हैं उससे संतुष्ट हैं?

जिस दिन संतुष्ट हो जाएंगे, लिखना ख़ुद-ब-ख़ुद छूट जायेंगे. बहरहाल, यह संतोष तो है ही कि लघुकथा की नयी पीढ़ी के अनेक हस्ताक्षर हमारे सपनों जैसा यानी भेदभाव और कुरीतियों से विहीन समाज की कल्पना करता सार्थक लघुकथा साहित्य रच रहे हैं.

❍ लघुकथा को उसके दृढ़ नियमों के साथ संचार माध्यम तक पहुंचाना ज़रूरी है क्या?

समकालीन लघुकथा, गद्य कथा-साहित्य की विधा है इस तथ्य को तो लगभग सभी लेखक और आलोचक स्वीकार करते हैं. इसलिए उन सभी अनुशासनों पर, जिनके चलते लघुकथा कथा-साहित्य की अन्य विधाओं से अलग कही या स्वीकार की जानी चाहिए, ध्यान देना हमारा दायित्व बनता है. 'दायित्व' स्व-नियोजन की क्रिया है, एक बोध है, जिसे व्यक्ति अनुशासनों के माध्यम से अपने आप में पनपाता है. अनुशासन को आप क़ानून बनाकर किसी पर लाद नहीं सकते. इसीलिए साहित्य में 'दृढ़ता' की बजाय 'रसमयता' और 'लयात्मकता' को प्रश्रय दिया जाना चाहिए.

❍ आपने तो फ़िल्म के लिए भी संवाद लिखे हैं. वो सपना जो अभी पूरा नही हो सका !

फ़िल्म ('कोख़'१९९४; लेखक व निर्देशक: आर एस विकल; गीतकार : कुंअर बेचैन; संगीतकार : रविंद्र जैन) में संवाद लिखना मेरा सपना नहीं था. मित्रतावश सहयोग था.

❍ लेखन घर में अगली पीढ़ी तक जा पाया है क्या? यदि नहीं, तो कारण क्या रहे?

मेरे अनुसार, सकारात्मक चिंताओं से जुड़े मानसिक व्यसन को 'लेखन' कहा जाना चाहिए. अगली पीढ़ी तक प्राय: व्यवसाय ही तुरंत जाते हैं; आर्थिक लाभों से दूर रखने वाले मानसिक-व्यसनों को कौन अपनाना चाहेगा?

❍ सफलता के मंत्र क्या रहे? आप अपने इस सफ़र से संतुष्ट हैं?

आप यदि मुझे सफल समझती हैं तो इसका एक ही मंत्र रहा—निरंतर अध्ययन और लेखन. मैं इस दृष्टि से तो संतुष्ट हूं कि जो कुछ भी लिखा, सकारात्मक और जनहित के स्तर का लिखा; लेकिन इस बिंदु पर असंतुष्ट हूं कि अपनी शक्ति से बहुत कम लिख सका, आलसी बना रहा.

❍ आज की रफ़्तार से सफलता व नाम के लिए भागती पीढ़ी अपना ब्रांड नेम स्थापित किये बग़ैर सिर्फ़ रचनाओं के दम पर ख़ुद को संभाल पायेगी? आपके सपने..?

सफलता, नाम, धन, ऐश्वर्य आदि आंखें मूंदकर पीछे भागने से हासिल नहीं होते. हो भी जायें तो तात्कालिक होते हैं, स्थायी नहीं. स्थायित्व के लिए 'तप' ज़रूरी है. लेखक होने के नाते, मुझे जो कुछ भी हासिल होगा, ज़ाहिर

है कि रचनाओं के दम पर ही हासिल होगा. मेरा सपना है कि मैं अपने समय को उसकी पूरी गहराई में समझने लायक बुद्धि का विकास कर सकूं और वैसी कथा-रचनाएं समाज को देता रहूं.

❍ हम भारतीयों के अंदर देश के प्रति ज़िम्मेदारी जगाने की बात करें तो, हमारी प्राथमिक ज़रूरत क्या है? उसे हम लेखक पूरा कर सकते हैं क्या?

देश के प्रति ज़िम्मेदारी का पहला क़दम अपने घर से शुरू होता है और उस क़दम का नाम है— अनुशासन. जो व्यक्ति अपने घर में अनुशासित नहीं है, वह पास-पड़ोस में; जो पास-पड़ोस के प्रति अनुशासित नहीं है, वह समाज में; जो शेष समाज के प्रति अनुशासित नहीं है, वह देश में अनुशासित नहीं रह सकता. जो अनुशासित नहीं है, वह देश क्या, किसी के भी प्रति ज़िम्मेदार नहीं हो सकता. अनुशासन हममें दायित्व-बोध जगाता है.

❍ क़द, प्रतिष्ठा, प्रसिद्धि के बाद आपके अंदर का लेखक पहले से ज़्यादा दृढ़ हुआ या लचीला?

क़द, प्रतिष्ठा, प्रसिद्धि जैसा मैं कुछ भी महसूस नहीं करता. जितना सामान्य मैं पहले था, उतना ही आज भी हूं.

❍ साहित्यिक सम्मेलन में पर्यावरण के प्रति जागरूकता की बात यदि अनिवार्य कर दी जाये तो...?

केवल साहित्यिक सम्मेलन में ही क्यों, सभी सम्मेलनों में क्यों नहीं? आज, 'पर्यावरण के प्रति जागरूकता' को मानव संस्कृति से जोड़ने की आवश्यकता है. बहुत-से पारंपरिक रीति-रिवाज पर्यावरण के लिए ख़तरा बन चुके हैं, धार्मिक आस्था के नाम पर नैसर्गिक संसाधनों का दोहन ही नहीं किया जा रहा, उन्हें भ्रष्ट और अशुद्ध भी किया जा रहा है. ऐसे रीति-रिवाजों में से कुछ को त्यागने और कुछ का स्वरूप बदल डालने की तुरंत ज़रूरत है.

❍ ईश्वर और धर्म को आप कैसे परिभाषित करेंगे?

ईश्वर मनुष्य की निर्मिति है. मनुष्य है तो ईश्वर है, मनुष्य नहीं तो ईश्वर भी नहीं. जिसे अधिकांश लोग 'धर्म' कहते या मानते हैं, वह विशुद्ध कर्मकांड है और इसीलिए स्वार्थपरक व्यवसाय है. गोस्वामी तुलसीदास रचित 'राम चरितमानस' में वर्णित कथा की व्याख्या कर-करके देश-विदेश के करोड़ों कथावाचक घी-शक्कर का आनंद ले रहे हैं. वीतराग के प्रणेता महावीर के करोड़ों अनुयायी कई-कई सौ एकड़ ज़मीन पर पंच-सितारा आश्रम बनाये बैठे हैं. तुलसीदास जी ने लिखा है — 'कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रंथ, दंभिन्ह निज मति कल्प करि प्रगट किये बहु पंथ.' इस चौपाई के जानकार रामकथा वाचकों के भी अपने-अपने आश्रम हैं, 'नमो नारायण', 'हरि ओम', 'जय विराट', 'जय जिनेंद्र', 'जय श्रीकृष्ण', 'राधे-राधे' आदि अपने-अपने स्लोगन हैं. मेरा मानना है कि जैसे ईश्वर का संबंध 'मनुष्य' से है, वैसे ही 'धर्म' का संबंध 'मनुष्यता' से है.

एम-७०, नवीन शाहदरा,
दिल्ली-११००३२
मो. : ८८२६४९९११५

ग़ज़ल

नंदकिशोर बावनिया

आंखों में नमी चेहरे पर ग़म मिलते हैं ।
जिनके होंठों पर हो हंसी वो कम मिलते हैं ।।

हैं नज़रें बुझी-सी और होंठ सिले हुए ।
हो ख़ुशी दिल में जिनके वो कम मिलते हैं ।।

न हो कोई जुत्सजू न कोई तमन्ना हो ।
सुकून हो दिल में जिनके वो कम मिलते हैं ।।

मंसुब हो गुरबन जिनकी तकदीर से ।
ज़माने में उनको मसीहा कम मिलते हैं ।।

हैं बहुत बदख़्वाह तो इस ज़माने में ।
हमसे मुनिस इंसा कम मिलते हैं ।।

सियाह अंधेरों में भटक रही ज़िंदगी 'हनी'।
सिराज बनकर आने वाले कम मिलते हैं ।।

६३, सरस्वती नगर,
धार (म. प्र.)-४५४००१.
मो. ९४०६६६९३३३

सीमा जैन
८२, विजय नगर (माधव नगर)
२०१,संगम अपार्टमेंट,
ग्वालियर(म.प्र.) ४७४००२
मोबाइल : ८८१७७११०३३

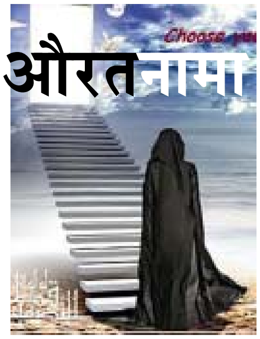

सन १९४२ की क्रांति-मूर्ति : अरुणा आसफ़अली

✍ डॉ. राजम पिल्लै

"...झंडे को देखने के लिए जब मैं मुड़ी तो मैंने देखा कि गोरा सार्जेंट उस झंडे को फाड़ रहा था और रौंद रहा था, जिसे मैंने दस मिनट पहले ही फ़हराया था. मैंने संकल्प किया कि मैं भी ब्रिटिश हुकूमत को चिथड़ा-चिथड़ा करने में इसी तरह से हाथ बटाऊंगी!..."

अरुणा आसफ़अली ने किया था — वह मौन दृढ़ संकल्प! और, उस समय शायद उन्हें एहसास भी नहीं हुआ था कि अपनी स्वयंस्फूर्त नेतृत्व-क्षमता और प्रखर तेजस्विता से अपनी संकल्प-पूर्ति की दिशा में पहला मज़बूत, साहसी क़दम-वे कुछ देर पहले ही उठा चुकी थीं!

वह तिरंगा झंडा तो कॉन्ग्रेस के वरिष्ठ सम्माननीय नेता मौलाना अबुल क़लाम आज़ाद के हाथों फ़हराया जाना था और 'अंग्रेज़ों, भारत छोड़ो' आंदोलन के शुरुआत की घोषणा की जानी थी पर उसे फहराया अरुणा आसफ़अली ने! ब्रिटिश हुकूमत ने एक दिन पहले की रात यानी ८ अगस्त को कॉन्ग्रेस के सभी महत्वपूर्ण नेताओं को गिरफ़्तार कर उन्हें अनजान जगहों पर भेज दिया था और सो वह अब तो अपनी होशियारी और कामयाबी पर फूल उठी थी कि ९ अगस्त की क्रांति तो अब होगी ही नहीं! नेता ही नहीं, प्रदर्शक ही नहीं, सिपहसालार ही नहीं तो मामूली कार्यकर्ता क्या करेगा? सिपाही भला क्या रणनीति तय करेगा? पर उस हुकूमत ने भविष्य के पद-चाप नहीं सुने! सर पर क़फ़न बांधकर रण-भूमि में उतरनेवाला सच्चा सूरमा या तो वीरगति को प्राप्त करता है या दुश्मनों को धराशायी करता है! अरुणा आसफ़अली ऐसी ही एक वीरांगना थीं; वे भले ही

गांधीजी के सविनय अवज्ञा आंदोलन में सम्मिलित सत्याग्रही थीं लेकिन उनका जुनून, उनका वतन पर क़ुर्बान होने का जज़्बा मध्ययुगी योद्धाओं जैसा ही था!

९ अगस्त १९४२, एक ऐतिहासिक क्रांति-दिवस :

८ अगस्त १९४२ को कॉन्ग्रेस कार्यकारिणी, समिति ने 'अंग्रेज़ों भारत छोड़ो आंदोलन' छेड़ने का प्रस्ताव पारित किया और घोषणा की कि ९ अगस्त १९४२ को सबेरे मुंबई के ग्वालिया टैंक मैदान में तिरंगा झंडा फहराकर इस आंदोलन के शुरुआत की घोषणा की जायेगी. गांधीजी ने अपने १२० मिनट के भाषण में बड़े मार्मिक शब्दों में इस आंदोलन के औचित्य को समझाते हुए कहा कि अब भारतवासियों के सामने 'करो या मरो' के अलावा और कोई विकल्प नहीं रह गया है. ब्रिटिश हुकूमत ने हमसे मशविरा किये बग़ैर ही हिंदुस्तानी जनता, हिंदुस्तानी फ़ौज को द्वितीय महायुद्ध में शरीक़ कर डाला है और हमारे शांतिपूर्ण प्रस्तावों और सहयोगों के बावजूद हमें आज़ादी देने के विषय में वह कोई सुनिश्चित उत्तर न देकर टाल-मटोल कर रही है.

ब्रिटिश सरकार ने ८ अगस्त की रात को ही कॉन्ग्रेस के सभी बड़े नेताओं को गिरफ़्तार कर लिया और अनजान जगहों पर भेज दिया और मान लिया कि ९ अगस्त की क्रांति की आग अब सुलगेगी ही नहीं. उसमें अरुणा आसफ़अली

को शायद गांधी, नेहरू, पटेल, आज़ाद, सरोजिनी नायडू तथा अन्य अनेक नेताओं जितना 'महत्वपूर्ण' या 'ख़तरनाक' नहीं माना था, सो उनकी गिरफ़्तारी का वारंट नहीं निकला था, और यहीं सरकार का गणित चूक गया.

अरुणा आसफ़अली ग्वालिया टैंक मैदान में पहुंचीं, पुलिस का कड़ा बंदोबस्त था; उन्हें रोकने की ज़रूरत ही नहीं समझी गयी. वहां कार्यकर्ता खड़े थे; ख़ामोश, बेचैन! सबको, भारत भर को पता चल गया था अपने प्रिय नेताओं के गिरफ़्तार होने का. झंडा लगा हुआ था, फहराने के लिए कोई नहीं था, यों सोचा कार्यकर्ताओं ने, यों सोचा पुलिस ने. अरुणा आसफ़अली फुर्ती से आगे बढ़ीं, उन्होंने बड़ी शांति से झंड़ा फहराया, तिरंगा आसमान में लहरा उठा, कार्यकर्ता जुट आये, सलामी देने. पुलिस हड़बड़ाकर हथियारों को तानने लगी; भीड़ पर आंसू (मस्टर्ड) गैस का प्रयोग हुआ, लाठियां बरसायी जाने लगीं. लोग तितर-बितर तो हुए पर फिर आगे जाकर जुलूस की शक़्ल में, नारे लगाते हुए आगे बढ़ने लगे.

डॉ. राजम पिल्लै

अरुणा आसफ़अली तब तक ओझल हो गयी थीं. सरकार ने बहुतेरा ढूंढ़ा पर जगह बदल-बदल कर, भूमिगत रहकर वे और उनके साथी आंदोलन को जारी रखते रहे. सरकार ने तीन साल तक, किसी नेता को रिहा नहीं किया; अरुणा आसफ़अली की दिल्ली की संपत्ति जब्त कर ली. उन पर ५०००/- रुपये का इनाम घोषित किया. यहां तक कि बाद में गांधीजी ने एक पत्र लिखकर उनसे अपील की कि वे बाहर प्रकट हो जायें, आत्मसमर्पण कर दें, पर अरुणा आसफ़अली तब तक सार्वजनिक रूप से प्रकट नहीं हुईं जब तक सरकार ने उनके लिए निकाला हुआ वारंट रद्द नहीं कर दिया.

अरुणा, किशोरावस्था से ऐसी ही थीं. उन्होंने किसी व्यक्ति, सिद्धांत या दल को 'पूज्य' और अटल 'श्रद्धा-स्थान' नहीं माना. आदर सबका किया लेकिन, सदैव अपने विवेक को, अपनी स्वतंत्र चेतना को साक्षी बनाया. वे सदैव से निर्भीक थीं, तेजस्वी थीं. कर्मठ पुरुषार्थी थीं. उनका परिवार और परिवेश भी उनसे वह काम कभी नहीं करवा पाया जो उन्हें अनुचित लगता था, ढोंग, चापलूसी, बेईमानी से नफ़रत थी उन्हें और लंबे अर्से तक ऐसे माहौल में वे रह नहीं सकती थीं. उन्हें ज़िद्दी, सिरफिरी, दुस्साहसी माना गया, कहा गया लेकिन अपनी असहमतियों को ओजस्वी वाणी और प्रखर लेखनी के माध्यम से व्यक्त करने से वे कभी हिचकी नहीं.

अरुणा गांगुली का परिवार-परिवेश :

अरुणा का जन्म १६ जुलाई १९०९ को कालका, पंजाब में ब्रह्मसमाजी, ब्राह्मण परिवार में हुआ. उनके पिता उपेंद्रनाथ गांगुली पूर्वी बंगाल से आकर पंजाब में बस गये थे. ब्रह्मसमाजी सामान्यत: सुशिक्षित, प्रगतिशील और स्त्री-शिक्षा और व्यक्तित्व-विकास के समर्थक होते हैं. अरुणा गांगुली की पढ़ाई-लिखाई पहले सेक्रेड हार्ट कॉन्वेंट, लाहौर में और बाद में ऑल सेंट्स कॉलेज़, नैनीताल में हुई. उन्होंने कलकत्ता के गोखले मेमोरियल स्कूल में अध्यापन का कार्य भी किया.

राजनीतिक जीवन की शुरूआत :

अरुणा के वयस्क और राजनीतिक जीवन की शुरुआत ही विरोधों, वैमनस्यों के बीच हुई. अरुणा की मुलाक़ात इलाहाबाद में कॉन्ग्रेस के एक वरिष्ठ नेता आसफ़अली से सन १९२८ में हुई जो बाद में विवाह में परिणत हुई. परिवार-समाज में ख़ूब बवंडर उठा; आसफ़अली उम्र में अरुणा से बीस साल से भी ज़्यादा बड़े थे और मुसलमान थे. प्रगतिशील ब्राह्मोसमाजी भी इस बात को गले से उतार नहीं पाये कि ब्राह्मण कन्या का विवाह मुसलमान से हो. एकाध निकट संबंधियों ने तो अरुणा के नाम 'श्राद्ध' भी कर डाला.

अरुणा और आसफ़अली का यह सम्मिलन बहुत ही विधायक और आदर्श परिणामों का कारण बना. आसफ़अली, अरुणा के सही मायनों में 'फ्रेंड, फ़िलॉसफर और गाइड' थे. अरुणा, कॉन्ग्रेस पार्टी की सक्रिय सदस्य बनीं और गांधीजी के सन १९३० के नमक-सत्याग्रह में उन्होंने बढ़-चढ़कर भाग लिया, उन्हें गिरफ़्तार किया गया और अन्य नेताओं की रिहाई के बाद भी रिहा नहीं किया गया क्योंकि उन्होंने जेल में राजनीतिक क़ैदियों के साथ किये जाते दुर्व्यवहार के खिलाफ़ आंदोलन छेड़ दिया था. जनता की मांग पर और गांधीजी के हस्तक्षेप के बाद ही उन्हें रिहा किया गया.

अगस्त-क्रांति में अरुणा आसफ़अली की भूमिका :

अरुणा आसफ़अली को सन १९४२ की क्रांति की

नायिका का विरुद नाम जनता ने दिया. भूमिगत रहकर वे सक्रिय रहीं. उन्होंने राममनोहर लोहिया के साथ मासिक पत्रिका 'इंकलाब' का संपादन किया. वे कॉन्ग्रेस के ही भीतर के समाजवादी रुझानवादी गुट कॉन्ग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की सदस्य थीं.

आज़ादी के बाद की सक्रियता :

आज़ादी के बाद वे एक नयी पार्टी 'सोशलिस्ट पार्टी' में सन १९४८ में शामिल हुईं.

सन १९५० के शुरूआती दौर में वे कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया में शामिल हुईं. अपने समकालीन सामाजिक एक्टिविस्टों और सेक्यूलरिस्टों के साथ उनके गहन वैचारिक और व्यावहारिक संबंध रहे. लेकिन सन १९६४ में वे पार्टी से अलग हो गयीं.

सन १९६४ में जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु के बाद वे कॉन्ग्रेस पार्टी में लौटीं लेकिन राजनीतिक तौर पर वे सक्रिय नहीं रहीं. हालांकि महिला विकास के क्षेत्र में वे लगातार सक्रिय रहीं.

पत्रकार लेखक अरुणा आसफ़अली :

अरुणा आसफ़अली गहन विचारक, प्रखर लेखक और निर्भीक कार्यकर्ता थीं. श्रीमती एनी बेसेंट के व्याख्यानों-लेखन-कार्यों को छोड़ दिया जाये तो यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि स्वतंत्रता-सेनानियों में अरुणा आसफ़अली का वैचारिक और व्यावहारिक योगदान बड़ा व्यापक और गहरा है. उन्होंने 'पेट्रीयोट' (दैनिक) और 'लिंक' (साप्ताहिक) के प्रकाशन-संपादन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था. उनके लेख, संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत भाषा-शैली और कथ्य में बेजोड़ हैं. महिला नेताओं में तो उनका कोई सानी ही नहीं है.

सम्मान-पुरस्कार :

अरुणा आसफ़अली को 'इंटरनेशनल लेनिन पीस प्राइज़', 'जवाहरलाल नेहरू एवार्ड फॉर इंटरनेशल अंडर-स्टेंडिंग' प्रदान किया गया. उन्हें जीवन-काल में 'पद्मविभूषण' अलंकरण मिला और मरणोपरांत भारत रत्न के अलंकरण से भी विभूषित किया गया.

क्रांति-मूर्ति अरुणा आसफ़अली :

अरुणा आसफ़अली आजीवन अजेय रहीं. २९ जुलाई सन १९९६ को ८७ साल की उम्र में उनका देहांत हुआ.

अरुणा आसफ़अली ने अंतिम दो-तीन दशकों में राजनीति में सक्रिय भाग नहीं के बराबर लिया. आज़ादी की लड़ाई में 'सरफ़रोशी की तमन्ना' लेकर क़त्लगाह की ओर कूच करनेवाले कई वीरों-वीरांगनाओं ने आज़ादी पा चुकने के बाद जैसे अपने को सामाजिक क्षेत्र से हटा लिया. उन्होंने हथियार नहीं डाले लेकिन शायद उन्हें यह एहसास होने लगा था कि युद्ध भले ही ज़ारी हो, पर युद्ध के नियम बदल गये हैं, रणनीतियां बदल गयी हैं. अरुणा आसफ़अली ने एक स्थान पर यह दर्ज किया है कि हम सत्ता के हस्तांतरण के गवाह बने, हमने सत्ता पर कब्ज़ा नहीं किया था.

अरुणा आसफ़अली सन १९४२ की क्रांति-मूर्ति थीं, अगस्त-क्रांति की नायिका थीं, उन्होंने स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीति में सक्रिय भाग लिया होता तो शायद इस देश की तस्वीर-तक़दीर कुछ और बनी होती.

ऐसे में शायर इक़बाल असहर की ये पंक्तियां याद आ-आ जाती हैं :

'न जाने कितने चिराग़ों को मिल गयी शोहरत
एक आफ़ताब के बेवक़्त डूब जाने से.'

६०१–ए, रामकुंज को. हॉ. सो.,
रा. के. वैद्य रोड, दादर (प.),
मुंबई-४०००२८.
मो.:९८२०२२९५६५.
ई-मेल : pillai.rajam@gmail.com

ग़ज़ल

राजेंद्र निशेश

दोस्तो! उम्र से मैं धूप के साये में बढ़ा हूं
कभी नन्हा-सा दीपक बन आंधियों से लड़ा हूं।

रात है बिखरी हुई और चांद है रूठा हुआ
क्या सलवटों के बिस्तर पर उनींदा-सा पड़ा हूं।

वक़्त की पलकों पर जब कंपन है ठहरी हुई
उदासी के तालाब में यूं कमल-सा खिला हूं ।

मस्तियों की महफ़िलें तो रोज़-रोज़ सजती हैं
हलचल की दहलीज़ पर ख़ामोशियों-सा खड़ा हूं ।

इन रगों में दौड़ता है पगला होने का जुनून
ज़िंदगी की क़िताब में बस नगीने-सा जुड़ा हूं ।

२६९८, सेक्टर ४०-सी,
चंडीगढ़-१६००३६

एक समुदाय द्वारा खोये हुए अवसर

✍ फौज़ान अल्वी

(''वातायन'' स्तंभ के अंतर्गत हम ऐसे लेख या टिप्पणियां प्रकाशित करते हैं जिनसे हमें सोचने की एक नयी दिशा मिले, सामने कोई नयी खिड़की खुलती दिखायी दे. यह लेख इंडियन एक्सप्रेस के अंग्रेज़ी संस्करण में छपा था. प्रस्तुत है संपादक डॉ. अरविंद द्वारा किया भाषांतर.)

९ नवंबर २००८ के बाद से तूफ़ान के केंद्र में समूचे विश्व की नज़रें हमारी ओर लगी हैं. अच्छे मुसलमानों के रूप में हमने अपना पक्ष रखने की भरसक कोशिश की है — लेकिन क्या इससे कोई फ़र्क पड़ा है. मैं इस लेख के माध्यम से भारतीय मुसलमानों से मुख़ातिब होना चाहता हूं.

बहुत से कमीशनों और रिपोर्टों में दर्ज़ हुआ है कि अनेक सामाजिक कारकों और घटकों के आधार पर मुसलमान सबसे अधिक गये-गुज़रे हैं. इसका ज़िम्मेदार कौन है? क्या आज़ादी के बाद आयी सभी सरकारें? अगर नहीं तो मैं जानना चाहूंगा कि किस सरकार ने हमारा जीवन स्तर उठाने की कोशिश की, सिवाय उर्दू मौलवी देने और मदरसे खोलने के लिए फंड देने और सालाना प्रतीकात्मक इफ़्तार अरैंन्ज़ करने के. कितनी बार बैठ कर हमने अपनी आने वाली पीढ़ियों के बारे में सोचने की कोशिश की है, बिना मुफ़लिस और सताये हुओं का चोला पहने? हमने कभी क्या कोशिश की है कि मुसलमान युवाओं को मदरसों से निकाल कर मुख्यधारा में लायें? किसी अच्छे मदरसे से पास हुआ ग्रेजुएट महीने में दस हज़ार रुपये नहीं कमा सकता. कुरान जब कहती है हमें ज़कात देना चाहिए तो उसके पीछे छिपा उद्देश्य हमें समझना चाहिए. कुरान के अनुसार पहले हम इतनी आमदनी पैदा करें जिससे हम अपने परिवार का अच्छी तरह भरण-पोषण करें और उसी आमद से ज़कात के तौर पर ग़रीब-गुरबों की मदद भी कर सकें.

मदरसे में पढ़ने वाले उस छात्र की कल्पना कीजिए जिसने ज़कात के बिना पर पढ़ाई शुरू की और ज़कात से ही नौकरी शुरू की. मैं दिल्ली में ऐसे कई मदरसों को जानता हूं जो विभिन्न बोर्डों से समय पर पैसा न मिलने पर मदद की गुहार लगाते हैं. क्या इसी तरह का समाज हम बनाना चाहते हैं?

हाफिज़े-कुरान (जिसे पाक कुरान पूरी कंठस्थ होती है और वह अमल में लाता है) का कुरान और हदिथ में बहुत आदर के साथ वर्णन किया गया है. लेकिन औसतन हाफिज़ की तनख़्वाह दस हज़ार रुपयों से ज़्यादा नहीं होती, हां रोज़ का खाना टिफ़िन द्वारा अतिरिक्त ज़रूर उपलब्ध कराया जाता है. पर क्या यह वाज़िब और काफ़ी है? हमने मदरसे के इस छात्र के लिए जो हाफिज़ बना क्या कुछ किया? पैगंबर ने सफ़ाई के बारे में बहुत कुछ कहा है लेकिन उन इलाकों में जहां मुसलमान रहते हैं दूर से वहां की गंदगी की हालत देखी जा सकती है. यही हाल महिलाओं के सम्मान और बराबरी का है. हाल ही में तीन तलाक के मुद्दे पर हमने मुसलमानों का मज़ाक बनाया. कुरान में इसका कहीं ज़िक्र नहीं है, तो हमने क्यों नहीं कहा कि यह ग़लत है और ज़रूरत हो तो निकाहनामा को बदला भी जा सकता है? लेकिन हमारे तथाकथित मुसलमान बुद्धिजीवियों ने इसका सामाजिक बहिष्कार करने का आव्हान किया है. परंतु बोर्ड बताये कि वर्तमान में, आज के ज़माने में वह यह सामाजिक बहिष्कार कैसे लागू करेगा. क्या सब मुसलमानों के पासपोर्ट, आधार कार्ड, पैन कार्ड कैंसल कर दिये जायेंगे? क्या लोगों को बाज़ारों, मालों में जाने से रोका जायेगा?

आइए, अब शिक्षा और मुख्यधारा के हिस्सा बनने की बात करें. शिक्षित अल्पसंख्यकों के लिए आज कई सौ करोड़ों की स्कीमें हैं. हमारे कितने लीडरों ने इनके बारे में पता किया है और उनसे फ़ायदा उठाया है. हम कहते हैं कि वर्तमान सत्ताधारियों ने हमारे लिए कुछ नहीं किया और हमारी अनदेखी की है. यह मान भी लें तो क्या ऐसा करना हमारे नेताओं और मौलवियों की मिलीभगत के बिना संभव हो सकता है?

मुझे आश्चर्य होता है कि मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद के बाद अब तक मुख्यधारा से जुड़ा कोई निस्वार्थी लीडर क्यों नहीं हुआ? तथाकथित सेकुलर पार्टियों में हमारे तथाकथित लीडर कैसे हैं यह सबको मालूम है. उनका वास्तविक योगदान क्या है सिवाय राजनीति के खेल खेलने और अपने लिए सीटें हथियाने के? २०१७ के उत्तर प्रदेश के चुनावों ने हालात और बदतर कर दिये हैं. भाजपा को ३१२ सीटें मिलने के बाद मुसलमानों की वहां राजनीति में कोई भूमिका ही नहीं रह गयी है. उन सभी मौलानाओं को

जो अपनी चहेती पार्टियों की मदद करते थे, एक पल ठहर कर सोचना चाहिए कि ऐसा कैसे हुआ? हम मुसलमान उ. प्र., पश्चिम बंगाल और आसाम में किंग-मेकर हुआ करते थे लेकिन क्या किसी पार्टी ने हममें से किसी को कभी गृहमंत्री या उप-उपमंत्री बनाया हो?

अभी भी मुसलमानों में बहुत से आम-फ़हम लोग ऐसे हैं जो बिना कमनसीबी का गाना गाये कड़ी मेहनत करते हैं. ये लोग खुदा की बंदगी करते हैं और रमजान में रोज़ा भी रखते हैं.

देश के एक बड़े समुदाय होने के कारण आज समय की मांग है कि हम मिल-बैठकर मंथन करें कि कहां ग़लती हुई है? चाहें शिक्षा प्रणाली की बात हो, तीन तलाक का मसला हो या मदरसों का आधुनिकीकरण हो या ऐसे ही अनेक दूसरे मसलें हों. तभी सरकार या बहुसंख्यक समाज हमें हमारा यथोचित हक देगा. शिक्षा और आर्थिक सशक्तीकरण ही हमारे आगे बढ़ने में सहायक होगा.

(साभार : 'इंडियन एक्स्प्रेस') **अनुवादक : डॉ. अरविंद**

आम आदमी की पीड़ा को अभिव्यक्त करतीं हृदय स्पर्शी ग़ज़लें

✍ घनश्याम मैथिल 'अमृत'

इस ज़िंदगी की जय (ग़ज़ल संग्रह) **– चंद्रसेन 'विराट'**
प्रकाशक - अमन प्रकाशन, रामबाग, कानपुर-२०८०१२
मूल्य - ३९५/-

हिंदी काव्य जगत में, परिनिष्ठित हिंदी का प्रयोग अपने गीतों, मुक्तक, दोहों के साथ ही बख़ूबी ग़ज़लों में भी सहज रूप में करने वाले वरिष्ठ गीतकर श्री चंद्रसेन 'विराट' ने अपनी अलग पहचान बनायी है. वे हिंदी के तत्सम शब्दों का प्रयोग बख़ूबी अपनी सभी काव्य विधाओं में सहज रूप से करते रहे हैं, उन्होंने निश्चित ही भाषा और भाव की दृष्टि से अपने सृजन को एक नयी पहचान दी है. प्रस्तुत ग़ज़ल संग्रह के बारे में अपनी बात रखते समय मुझे बरबस ही अदम गोंडवी की ग़ज़ल के दो युग्म (शेर) यहां स्मरण में आ रहे हैं, उन्हें आपसे साझा करना समीचीन समझता हूं, उन्होंने कहा है, ''भूख के अहसास को शेरो-सुखन तक ले चलो, या अदब को मुफ़लिसों की अंजुमन तक ले चलो. जो ग़ज़ल माशूक के जलवों से वाकिफ़ हो गयी, उसको अब वेबा के माथे की शिकन तक ले चलो.'' यानी दुष्यंत कुमार, और अदम गोंडवी की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए विराट जी ने भी अपनी ग़ज़लों को महबूब से मुक्त कर मज़दूर की पीड़ा को व्यक्त करने का औज़ार बनाया है. अब ग़ज़ल क्या है, उसकी परिभाषा, व्याकरण और सौंदर्य शास्त्र को लेकर समय-समय पर अनेक बातें की जाती रही हैं, उन पर चर्चा न करके, विराट जी 'समर्पण' के अंतर्गत संग्रह के प्रारंभ में जो लिखते हैं उसे यहां उल्लेखित करना आवश्यक समझता हूं, वे लिखते हैं ''ग़ज़ल के रसिक पाठक और सुधी आलोचक, अब धीरे-धीरे यह मानना आवश्यक समझने लगे हैं कि ग़ज़ल के आगे किसी विशेषण लगाने की अनिवार्यता नहीं रह गयी है. ग़ज़ल में यदि परिनिष्ठित हिंदी अपने ठेठ जातीय स्वाद, शक्ति एवं मुहावरेदानी के साथ प्रयुक्त हुई है तो वह स्वत: अपने आपको हिंदी ग़ज़ल कहलवा लेती है. वर्ष १९७० में 'निर्वसना चांदनी' ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित होने के बाद, सद्य: प्रकाशित ग़ज़ल संग्रह 'इस ज़िंदगी की जय' उनका तेरहवां ग़ज़ल संग्रह है, इसके साथ ही गीत, मुक्तक, और दोहे संग्रह की अनेक कृतियां नामचीन प्रकाशनों से प्रकाशित हो कर पाठकों के मध्य ख़ासी लोकप्रियता अर्जित कर चुकी हैं, ये प्रकाशित कृतियां उनकी सतत रचनाधर्मिता और सृजनशीलता का अनुपम उदाहरण हैं.

समीक्ष्य ग़ज़ल संग्रह में उनकी एक से बढ़कर एक विविध भावभूमि पर ९१ प्रभावी ग़ज़लें पाठकों के सम्मुख मौजूद हैं. अब संग्रह की पहली ग़ज़ल में एक किसान की पीड़ा का चित्र देखिए — ''सुख से दु:खों का ज़्यादा ही अंतर बना रहा परिवाद ज़िंदगी से बराबर बना रहा जो रोटियां उगाता है अधपेट रह के भी, क्यों ख़ुदकुशी के नाम पर तत्पर बना रहा.'' एक छोटी बहर की ग़ज़ल में प्रेम की बड़ी परिभाषा देखते ही बनती है. ''आमने-सामने, ला दिया राम ने, प्रेम में दी हमें/चांदनी घाम ने.'' एक अन्य ग़ज़ल में वे समसामयिक कई प्रश्नों को उठाते हुए राष्ट्रभाषा हिंदी का अपने क्षेत्रीय तुच्छ स्वार्थों के चलते कुछ लोगों द्वारा विरोध किये जाने पर अपने दर्द को इन शब्दों में पिरोते हैं. ''मौसम यह ख़ुशगवार नहीं है तो क्या करें,/अब बाग में

बहार नहीं है तो क्या करें.'' ''हिंदी ही राष्ट्रभाषा हो, कुछ प्रांत को मगर/स्वीकार यह करार नहीं है तो क्या करें.''

आज पर्यावरण विनाश के दुष्परिणाम से सारा विश्व चिंतित है, तो ग़ज़लकार इससे कैसे अछूता रह सकता है, एक बानगी देखिए, ''कहां से बात निकली थी कहां तक आ गयी देखो,/दिलों के सर्द मौसम को बहुत गरमा गयी देखो,/ प्रकृति थी, शांत सुंदर भी, बहुत शोषण सहा उसने,/ कुपित होकर जरा बिफरी कहर बरपा गयी देखो.''

अब कविता को परिभाषित करते हुए वे कहते हैं, ''नहीं है सिर्फ़ यह कविता, ये कविता की कहानी है/हुई जो छंद में लिपिबद्ध, अनुभव की जुबानी है/ न मैली हो न बासी हो, सुसंस्कृत और सारस्वत,/रहेगी पीढ़ियों के हित सुरक्षित यह निशानी है.'' आज नयी पीढ़ी से वे क्या चाहते हैं, ''हम गुणों को खोज अंकन कर रहे हैं,/आप केवल दोष दर्शन कर रहे हैं. अस्मिता है भोज, भूषा और भाषा,/इस त्रयी के प्रति सचेतन कर रहे हैं,'' अपने सृजन के बारे में उनकी यह अभिव्यक्ति देखिए, ''कितनी ही सुबहें शामें यूं ही गयीं निकल के,/फूटे न कोई बोल गीत या ग़ज़ल के,/ उठ्ठो, चलो कि चलकर मंज़िल के पास पहुंचो,/मंजिल आने वाली है ख़ुद पास चलके.''

व्यंग्य के रूप में यथार्थ बयानी पाठक के हृदय को अंदर तक छू जाती है, ''कवि तू अपनी राम-कहानी रहने दे,/मत भर ला आंखों में पानी रहने दे,/व्यंग्य भरी कुछ ज़्यादा ही कड़वी हैं ये,/रहने दे कबिरा की बानी रहने दो.'' दोहरे और दोगले चरित्र पर वार वे कुछ यों करते हैं, ''क्यों करते इतना हंगामा छोड़ो भी,/बंद करो एकांकी ड्रामा छोड़ो भी,/सामाजिक सेवक हो दिल में खोट न कुछ,/क्यों सत्ता का पल्लू थामा छोड़ो भी.'' वर्षा ऋतु का मनोहारी सहज चित्रण, ''मध्य शरद, वर्षा तूफ़ानी/मौसम की कैसी मनमानी,/ जारी है बूंदों की टप-टप,/दु:ख देते हैं छप्पर छानी.'' निरंतर सृजन के बारे में ऊर्जा से भरी ग़ज़ल की यह पंक्तियां, ''देव-दर्शन की ललक मन में हरी होती रहे,/देह जब तक साथ दे, यायावरी होती रहे, काव्य जीने की कला का अंग है कवि थके नहीं/शब्द जड़ने की कठिन कारीगरी होती रहे.'' व्यवस्था के विरुद्ध ग़ज़ल के यह शेर ग़ज़लकार कहता है, ''प्रश्नों का न हो कोई समाधान क्या करें,/हम हो चुके हैं ख़ूब परेशान क्या करें, बर्दाश्त की हदें हुई हैं पार इसलिए,/कर दें बगावतों का ही ऐलान क्या करें.''

वर्तमान आपाधापी से भरे भौतिक समाज में जब नैतिकता का ह्रास होता है तो ग़ज़लकार कह उठता है, ''पिघले हुए दु:ख से ही आंसू की बनावट है,/जीवन के कपोलों पर पानी की लिखावट है, समृद्धि बढ़ी जितनी, उतनी घटी नैतिकता,/जीवन तो उठा लेकिन मूल्यों में गिरावट है.'' प्रेम को परिभाषित करता एक और दृष्टिकोण, ''यह प्रेम सृजन के हित, अहमों का विसर्जन है,/ वह रूप का रचनाकुल बेशर्त समर्पण है, छोटे बहर की लंबी ग़ज़ल कंठ मिला तो गाता रह,/नूतन गीत सुनाता रह,/अक्षय रस का पात्र ग़ज़ल,/पीता और पिलाता रह.'' इसी कलेवर की छोटी बहर में एक और २० शेर वाली ग़ज़ल, ''प्यार किया पछताना क्या,/रोना और रुलाना क्या,/है संवेदी मनुज उसे इक रोबोट बनाना क्या.'' इस ग़ज़ल का आनंद कुछ अलग ही है, ''देख शव, वैराग्य आवृत हो गये, छोड़ घर सिद्धार्थ निसृत हो गये. बोध पा कर बुद्ध स्वीकृत हो गये, लक्ष्य पर गौतम तथागत हो गये.''

इस प्रकार इन ग़ज़लों में गीत-प्रीत, प्यार-मनुहार, प्रकृति-संस्कृति, पीड़ा-संत्रास, दुलार-फटकार, आस-विश्वास, मिलन-विछोह, करुणा-शृंगार यानी विविध रसों से पगी ये ग़ज़लें हमें सोचने को विवश करती हैं. इनमें शुद्ध संस्कृत निष्ठ हिंदी के शब्द हैं तो उर्दू-फ़ारसी शब्द भी सहज रूप से आये हैं, वहीं रोबोट, ड्रामा, पेन्ट, कोट, टाई और बायपास जैसे कुछ अंग्रेज़ी भाषा के शब्द अगर ग़ज़ल में आये तो उनका प्रयोग भी ग़ज़लकार ने किया है. पुस्तक का आवरण प्रभावी, मुद्रण साफ़-सुथरा है. विराट जी की अन्य पुस्तकों की भांति उनके इस संग्रह को भी पाठकों का भरपूर प्यार मिलेगा, इस बात की मुझे पूर्ण उम्मीद है.

'प्रणाम', जी/एल-४३४, अयोध्या नगर, भोपाल-४६२०४१ (म. प्र.)

'अंदाज़ नया' : व्यंग्य का बयान

डॉ. दामोदर खड़से

अंदाज़ नया (लघुकथा संग्रह) — **अशोक गुजराती**
प्रकाशक - अयन प्रकाशन, १/२०, महरौली, नयी दिल्ली-११००३०. मूल्य - २४०/- रु

थोड़े में बहुत और बहुतों के बारे में बयान लघुकथा विधा की ख़ूबी है. इसमें व्यंग्य का तड़का देने से बात बहुत दूर तक पहुंचती है. बात केवल शब्दों की सीमा तय करने से नहीं बनती; बल्कि उसके बयान की व्यंग्यात्मकता जब व्यक्ति-समाज-व्यवस्था की विसंगतियों, विरोधाभासों, मुखौटों और अटपटेपन पर मार करती है, तब जन-सामान्य का मन

इसे अपने आसपास की शल्यचिकित्सा समझता है. यही लघुकथा का धर्म हो उठता है. लघुकथा की व्यंग्यात्मकता उसकी आत्मा है. विस्तार की सीमा तो उसमें होती है, पर इसे गिनने की आवश्यकता नहीं है. इसकी मारक क्षमता बहुत तेज़ और व्यापक होती है. भ्रष्टाचार, अनाचार, दुराचार, पाखंड, ढोंग और कुप्रथाएं इसके निशाने पर होते हैं. यह मिठास के कैप्सूल में कड़वी दवा है. डॉ. कमलकिशोर गोयनका इसे जीवन की व्याख्या कहते हैं. मधुदीप के अनुसार साहित्य की अन्य विधाओं की तरह लघुकथा एक महत्वपूर्ण विधा है.

डॉ. अशोक गुजराती महत्वपूर्ण लघुकथाकार हैं. अनेक कोशों और श्रृंखलाओं में उनकी लघुकथाओं का प्रमुखता से समावेश किया गया है. वैसे उनकी पहचान कथाकार-उपन्यासकार के रूप में उतनी ही प्रखरता के साथ है. जहां तक लघुकथा की बात है, तमाम पत्र-पत्रिकाओं में उनकी लघुकथाएं प्रमुखता से प्रकाशित होती रही हैं. अब उनका लघुकथा संग्रह 'अंदाज़ नया' प्रकाशित हुआ है.

'अंदाज़ नया' में डॉ. अशोक गुजराती की ७१ लघुकथाओं का समावेश है. ये लघुकथाएं बड़ी ख़ूबी के साथ जीवन की विसंगतियों पर प्रहार करती हैं. वे कहते हैं, प्रत्येक लघुकथा लिख लेने पर पूर्णता का अहसास है. जन-साधारण के जीवन की विडंबनाओं को व्यक्ति-दर-व्यक्ति तक पहुंचाना मेरा ध्येय रहा है. शिक्षा जगत का भ्रष्टाचार अब आम बात हो गयी है. लेकिन गुजराती ने 'तेरा तुझको अर्पित, क्या लागे मेरा' में ऐसे भ्रष्ट अधिकारी का नक़ाब खींचा है, जो परीक्षा में नंबर बढ़वाने के आश्वासन पर हज़ारों रुपये ऐंठता है और शानोशौक़त की ज़िंदगी जीता है. उसका तरीक़ा नया है, नायाब है. काम न बनने पर पैसे लौटा भी देता है. 'धर्म' में पत्नी, पति को नौकरानी से बलात्कार के केस से बचा लेती है. प्रेम था उसे पति पर वह धोखा खा गयी और तलाक लेती है. पहला उसका पत्नी 'धर्म' था और दूसरा 'स्व-धर्म'. 'रिश्ते' लघुकथा भी भाइयों की आपसी रंजिश का चित्रण है, जिसमें 'गुडविल' भुनाने की चाल है.

'हींग लगे न फिटकरी' व्यवस्था जनित भ्रष्टाचार से नफ़ा कमाने का उदाहरण है. 'एवज़' में वृद्ध पिता को वृद्धाश्रम ले जाते समय बेटे के ज़ख्मी होने पर पिता की छटपटाहट का चित्रण है. साथ ही, पिता की ममता के दर्शन भी इसमें होते हैं. 'बात एक रात की' सांप्रदायिक भावनाओं से पीपल के पेड़ के अस्तित्व की कहानी है. पेड़ से किसी को लगाव नहीं, केवल भावनाओं का खेल, दांव पर लग जाता है, विसंगति और विडंबना के चलते और अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए प्रशासन किस तरह पक्षपाती भी है और स्वार्थ के लिए गूंगा-बहरा भी. लेखक ने बहुत सूक्ष्मता से दो संप्रदाय के लोगों की मानसिकता और धर्मांधता का निरूपण किया है. 'स्वाभिमान' परिचय के बढ़ते क़दम और अदावत की कथा है. 'अपना-अपना सच' अलग भाव-भूमि की कथा है, जिसमें भद्र व्यक्ति गाली-ग़लौच करने वाले के साथ कुछ अपराध कर देता है और सो नहीं पाता उधर गाली-गलौच करने वाला शराब पीकर खर्राटे भरता है. यह एक संवेदनशील व्यक्ति की अपनी अनचाही प्रतिक्रिया के लिए अफ़सोस की कहानी है. इसी तरह 'ख़ोखल', 'ठिठोली', 'शापग्रस्त', 'पुनर्वास', 'अनंतर', 'शहादत' आदि लघुकथाएं जीवन की तमाम विसंगतियों को उजागर करने में सफल रही हैं.

'अंदाज़ नया' नये अंदाज़ की कहानी है. पति-पत्नी की कहानी है. पति की शातिरी की घटना. साठ साल में उसे सूझता है कि वह नयी युवती से शादी कर ले ताकि पत्नी को भी बुढ़ापे में कुछ मदद हो सके. पत्नी बड़ी चतुरता से इस प्रस्ताव का खंडन कर किसी नवयुवक से अपनी शादी का प्रस्ताव रखती है ताकि पति को बुढ़ापे में मदद मिल सके. ऊपर-ऊपर से यह एक मज़ाक लग सकता है, लेकिन इसके पीछे पुरुष की दमित विषयाकर्षण और उतरती उम्र में इच्छा का सुप्त प्रकटीकरण है. नारी बहुत चतुरता से 'अंदाज़ नया' व्यक्त कर स्थिति पर नियंत्रण कर लेती है. यह शीर्षक कथा है. डॉ. अशोक गुजराती निरंतर लेखन कर रहे हैं. प्रख्यात समाजसेवक बाबा आमटे पर उन्होंने महत्वपूर्ण उपन्यास की रचना की. उनकी कई कहानियां पत्र-पत्रिकाओं में आती रही हैं. कई संग्रह आये. नवीनतम कथा संग्रह 'ये नहीं कि ग़म नहीं' चर्चा में है.

गुजराती की शैली रोचक, व्यंग्य का पुट लिये हुए और मनोवैज्ञानिक ढंग से स्थिति की तह तक जाने वाली होती है. इस लघुकथा-संग्रह की कथा व्यंग्य को हथियार बनाकर जीवन की विसंगतियों और विडंबनाओं पर प्रहार करती है. मनुष्य के स्वभाव, स्वार्थ और शातिरी को बड़ी सूक्ष्मता से पकड़कर पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, व्यवस्थाजनित बेईमानियों का पर्दाफ़ाश करने में ये कथाएं सफल सिद्ध हुई हैं. डॉ. अशोक गुजराती की सृजन यात्रा का यह पड़ाव बहुत आशा जगाता है.

बी-५०३/५०४, हाई ब्लिस,
कैलाश जीवन के पास,
धायरी, पुणे-४११०४१.

“कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार-२०१७”

अभिमत-पत्र

वर्ष २०१७ के सभी अंकों में प्रकाशित कहानियों के शीर्षक, रचनाकारों के नाम के साथ नीचे दिये गये हैं. वर्ष २०१६ के चारों अंक **“कथाबिंब”** की वेबसाइट www.kathabimb.com पर उपलब्ध हैं. पाठक अपनी पसंद का क्रम (१,२,३,...७,८) सामने के खाने में लिखकर हमें भेजें. आप चाहें तो इस अभिमत-पत्र का प्रयोग करें अथवा मात्र आठ कहानियों का क्रम अलग से एक पोस्टकार्ड पर लिख कर भेज सकते हैं या ई-मेल द्वारा भेजें. प्राप्त अभिमतों के आधार पर पिछले वर्ष की तरह ही सर्वश्रेष्ठ कहानी (१५०० रु. - एक), श्रेष्ठ कहानी (१००० रु. - दो) तथा उत्तम कहानी (७५० रु. के पांच) पुरस्कार घोषित किये जायेंगे. जिन पाठकों की भेजी क्रमवार सूची अंतिम सूची से मेल खायेगी उन्हें कथाबिंब की त्रैवार्षिक सदस्यता (२०० रु.) प्रदान की जायेगी. कथाबिंब ही देश की एकमात्र पत्रिका है जिसने इस तरह का लोकतांत्रिक आयोजन प्रारंभ किया हुआ है. इसकी सफलता इसी में है कि ज़्यादा से ज़्यादा पाठक अपना निष्पक्ष मत व्यक्त करें. पाठकों का सहयोग ही हमारा मुख्य संबल है.

कहानी शीर्षक / रचनाकार	आपका क्रम
१. एक ऋतु ऐसी भी - नीरजा हेमेंद्र	
२. मां के चले जाने के बाद - डॉ. रमाकांत शर्मा	
३. पानी की प्यास - डॉ. अमिताभ शंकर राय चौधरी	
४. कोख़ - अरुणा जेठवाणी	
५. सृजन यात्रा - माधव नागदा	
६. रात भर बर्फ़ गिरती रही - संतोष श्रीवास्तव	
७. सरवन - डॉ. पूरन सिंह	
८. महाठगनी माया - डॉ. लखन लाल पाल	
९. भीतर का आदमी - गोवर्धन यादव	
१०. सहयात्री - वंदना शुक्ला	
११. प्रेम दीवानी- पुष्पा सक्सेना	
१२. पांव बदलता सफ़र - अनुपम श्रीवास्तव	
१३. रेगिस्तान में बारिश - राकेश भ्रमर	
१४. पप्पू पाकिस्तानी - जूनियर मंटो	
१५. नायिका - गिरीश पंकज	
१६. सिग्नल के पार ज़िंदगी - डॉ. लता अग्रवाल	
१७. बड़ी होती लड़की - मानवी वहाणे	
१८. अमावस का चांद - शकुंतला पालीवाल	
१९. पटवारन मां - नीता श्रीवास्तव	
२०. कटघरे में खड़ा रिश्ता - अर्चना मिश्रा	

आर सी एफ
साथ बढ़ें समृद्धी की ओर
स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर
पृथ्वी का अधिक पोषण
भारत की अधिक समृद्धि
छटें दशक में अपनी शुरुवात से ही आरसीएफ भारत की कृषि उत्पादकता को बढानेवाली एक प्रमुख शक्ति रही है। हमारी कामयाबी की जड़ें हमारे विश्वास में हैं, हमारा विश्वास है कि कृषक समुदाय की अधिकारिता ही सम्मलित विकास की ओर अग्रेसर करती है। लम्बे समय से हम भारतीय किसानों के सच्चे और विश्वसनीय हमसफर रहे हैं। निरंतर कृषि के माध्यम से निरंतर आत्मनिर्भरता आज राष्ट्र की जरुरत है और हम गुणवत्तापूर्ण कृषि इनपुट और प्रभावी कृषि सेवा किसानों को प्रदान करके मिट्टी की उचित देखरेख के साथ खेतों की उच्च उत्पादकता सुनिश्चित कर रहे हैं।
हमारे प्रेरणादायी निष्पादन :
देश के अग्रणीय उर्वरक निर्माता।
पिछले पाँच दशकों से भारतीय किसानों को समर्पित सेवाएँ।
उर्वरक क्षेत्र में पहली पाँच कंपनीयों में स्थान।
'उज्ज्वला' यूरिया, संयुक्त श्रेणी 'सुफला' (15:15:15 और 20:20:0) पानी में घुलनशील उर्वरक 'सुजला', जैविक उर्वरक 'बायोला' सूक्ष्म पोषक तत्वोंवाला 'माइक्रोला' जैसे कई उत्पाद।
रासायनिक क्षेत्र में अग्रणी, 20 औद्योगिक रसायनों का उत्पादन।
भविष्य की राह :
1.27 मिलियन टन प्रति वर्ष यूरिया बनाने के लिए विस्तारित परियोजना।
सीआइएल, गेल और एफसीआइएल के साथ मिलकर कोल गैसिफिकेशन के माध्यम से तालचर में उर्वरक संकुल स्थापित करना।
मध्य पूर्वी संसाधन समृद्ध देशों में यूरिया के लिए संयुक्त उद्यम नरियोजनाएँ स्थापित करना।
रॉक फास्फेट और पोटाश के लिए लम्बी अवधि का ऑफटेक करार करना।
निरंतर विकास पर सशक्त रुप से ध्यान केंद्रित करना।
आर सी एफ
राष्ट्रीय केमिकल्स एण्ड फर्टिलाइजर्स लिमिटेड
(भारत सरकार का उपक्रम)
"प्रियदर्शिनी", इस्टर्न एक्सप्रेस हाईवे, सायन, मुंबई - 400 022. | www.rcfltd.com

संपादकीय कार्यालय : ए-१०, बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-४०० ०८८.

मंजुश्री द्वारा संपादित व युनिटी प्रिंटिंग प्रेस, ९, रेतीवाला इंडस्ट्रीयल इस्टेट, भायखला, मुंबई-४०० ०२७, में मुद्रित.
टाईप सेटर्स : वन अप प्रिंटर्स, १२वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई-४०० ०७१. फोन : २५५१५५४१